TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182173
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83/S56R Accession No. H 289

Author श्रीवास्तव, हिमांशु।

Title रातबगा, नोगई।

This book should be returned on or before the date last marked below.

195

रात पागल हो गई

(मनोवैज्ञानिक एवं क्रान्तिकारी उपन्यास)

[*Atmosphere creates conspiracy against peace*]

लेखक

श्रीवास्तव हिमांशु

प्रकाशक

प्रतिभा प्रकाशन

पटना—४

प्रकाशक
पं० साँवलराम शर्मा
अध्यक्ष, प्रतिभा-प्रकाशन
मुरादपुर, पटना—४

(*Copyright reserved by Shrivastava Himanshu*)

मूल्य तीन रुपये

मुद्रक—
फ्री प्रेस, पटना

Only Cover printed at Swastika Press Calcutta

स्वर्गीया मात जी की पावन-स्मृति में—

वक्तव्य

एक बहुत बड़े दार्शनिक का कहना है--"When belly is full it says to the head-sing fellow" जिसका शाब्दिक अर्थ होता है (जब पेट भरा होता है तो मस्तक से कहता है--कुछ गा यार) ।

"मेरी कला और मेरे आलोचक" जैसे विषय को लेकर यदि मैं कुछ लिखने बैठूं तो अधिक पृष्ठों की आवश्यकता होगी और आपका समय नष्ट होगा । पर, आज का हिंदुस्तान और हिंदुस्तान का एक-एक इंसान (कुछ मुट्ठी भर लोगों को छोड़ कर) जीने के नाम पर जी रहा है-वैसे भी शव चल रहा है--चल रहा है ।

मेरे विषय में एक अंग्रेजी दैनिक ने अपने रविवार विशेषांक में लिखा--Shrivastava Himanshu has Selected such a pen of art which can produce conspiracy against peace" तो मैं आपसे स्पष्ट होकर कहूँगा--मुझे क्रान्ति में विश्वास है । मेरी कला, मेरे मन का कलाकार प्रसुप्त नहीं, बल्कि प्रबुद्ध है ।

मेरी साम्यवादी विचारधारा से जो परहेज करते हैं, करें, परन्तु लकीर पृथ्वी पर ही खींची जा सकती है--आकाश पर नहीं । वे दिन भी दूर नहीं, जब हिन्दुस्तान के मध्यवित्त समाज की आत्मा इसी धारा में अपने को लय कर देना चाहे, हिन्दुस्तान के प्रत्येक कलाकार की कला महाक्रान्ति की दिशा में मुड़ जाये ।

मैं अपने प्रकाशक सॉंवलराम शर्मा और भाई कस्तूरचंद का हार्दिक आभार स्वीकार करता हूँ, जिन्होंने पुस्तक को यथाशीघ्र प्रकाशित कर मुझे अपना सहयोग दान किया ।

हरिसन रोड, कलकत्ता,
१६-२-५२ ।

श्रीवास्तव हिमांशु

रात पागल हो गई

(१)

यों कमरे की निस्तब्धता तो कब की भंग हो चुकी थी, मगर वार्त्तालाप के क्रम में अचानक अभिरामा को ऐसा अनुभव हुआ जैसे उसके साथ सामने की कुर्सी पर बैठा हुआ अनिलदेव अति विचारक एवं समवेदनशील हो उठा, उसकी भाव-भंगिमा पर जैसे भावुकता की परिभाषा अंकित हो गई। और ऐसा अनुभव करने के दूसरे क्षण बाद उसने उन्हें प्रत्यक्ष होकर कुछ बोलते न पाया। वे शान्त तथा सौम्य दीख पड़े। उसने अनिलदेव से इसका कारण पूछने की उत्सुकता होने पर भी अपनी ओर से एक शब्द न कहा। वह चुप रही, मूर्त्तिवत्। अनिलदेव सामने की दीवार पर जिनपर काइयाँ जम चुकी थीं, ध्यानावस्थित होकर देखने लगे। वे क्या देख रहे हैं, इस कुतूहल वश अभिरामा ने भी अपनी गम्भीर दृष्टि डाली, मगर केवल दो क्षण के लिए। उसने अपनी आँखें नीची कर लीं। अनिलदेव ने एक मिनट बाद कोट की जेब से किंगस्टार्क का डिब्बा बाहर निकाला और अभिरामा की ओर देख कर पूछा, "यदि आपको कोई एतराज न हो तो मैं एक सिगरेट पीता, क्या विचार है आपका ?"

"सिगरेट . . . . सिगरेट पीयेंगे आप ?" अभिरामा के मुख से यह प्रश्नसूचक वाक्य निकल तो गया, किन्तु उसी पल उसे बड़ी ग्लानि हुई। उसने यह प्रश्न क्यों कर दिया। उसे अपने प्रति ही अपने में झिझक पैदा हुई। सिगरेट पीकर अनिलदेव अपने चरित्र के साथ कोई मानसिक व्यभिचार तो नहीं करते। नब्बे प्रतिशत पुरुष तो इसे पीते हैं। और दूसरी बात यह है कि वे कोई दूर के रिश्तेदार अथवा अतिथि नहीं हैं। ये तो उनके मित्र हैं, स्कूल से लेकर कॉलेज तक दोनों ने साथ ही शिक्षा पायी थी। इसके

साथ फर्ज-अदाई भी नहीं की जा सकती। कैसी असभ्यता का परिचय दिया उसने, पूछने पर वह स्वयं नहीं बतला सकती थी।

"क्यों, ऐसा क्यों पूछ रही हैं आप! देखिये न, सिगरेट मेरे पास है। मैं केवल आपकी अनुमति चाहता हूँ।" सिगरेट की बत्ती को दिखलाते हुए अनिलदेव ने कहा। अब अभिरामा और भी पानी-पानी हो गई। यदि वे सिगरेट पीते ही हैं, तो इसमें अनुमति की क्या आवश्यकता आ पड़ी?

"मेरी अनुमति?" अभिरामा ने पूछा।

"हाँ, आपकी अनुमति चाहता हूँ मैं।"

"किस अर्थ में?" अभिरामा ने प्रश्न किया, मगर उसे ऐसा लगा जैसे वह प्रश्न अपने आप हो गया। उसे ख्याल हो आया, संभव है वे इस विचार का पालन कर रहे हो कि कितने लोग ऐसे होते हैं जो कोई भी ऐसा काम जो उनकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल हो किसी व्यक्ति के द्वारा अपने समक्ष होते देखना पसन्द नहीं करते, यद्यपि उस कर्त्तृत्व का गुण-दोष कर्त्ता के साथ ही पाया जाता है फिर भी उन्हें कुछ कष्ट होता है। अनुमति माँगने का उसने अर्थ पूछ दिया, अतः वे उसकी सार्थकता की पुष्टि तर्कपूर्ण ढंग से करें। वह अनिलदेव का मुख निरखने लगी।

"अर्थ कोई गूढ़ नहीं है यों ही . . . ।"

अनिलदेव की बात काट कर अभिरामा ने घबड़ाहट के साथ कहा, "पीजिए न। आपको दियासलाई चाहिये तो कहिये ला दूं।" इस बार अनिलदेव ने कुछ न कहा।

एक क्षण उसके बोलने की प्रतिक्षा कर अभिरामा स्वयं कुर्सी छोड़ कर उठी। दो कदम अपने स्थान से वह ज्योंही आगे बढ़ी कि उसे रोक कर अनिलदेव ने कहा, "ठहरिये, आप कहाँ जाती हैं, क्या सोच रही हैं आप?" अभिरामा जहाँ पहुँची थी, वहीं ठिठक गई। उसने पूर्ववत् विनम्र होकर कहा, "आपको दियासलाई चाहिये न।"

"नहीं, आप बैठें। दियासलाई मेरे पास है।"--बोला अनिलदेव। अभिरामा भी लौट कर अपनी कुर्सी पर आ बैठी। मगर वह कुछ बेचैन-सी प्रतीत हुई। वह अभी क्या सोच रही थी, उसे याद नही। वह यह भी नहीं कह सकती कि वह कुछ सोच रही थी अथवा नहीं। पर, यह भी एक सत्य है कि अनिलदेव को उसकी मुखाकृति से कुछ ऐसा आभास अवश्य ही मिला है जिससे यह समझा जा सके कि वह कुछ सोच रही है। परन्तु जब वह कुर्सी पर आकर बैठी तो अनिलदेव ने अपना प्रश्न दुहराया नहीं। चाहिये था, अभिरामा उस सम्बन्ध में कुछ न बोले। लेकिन उसे ऐसा लगने लगा जैसे उसकी मानसिक पूर्णता का लोप प्रारम्भ हो रहा हो। उसने अनायास ही कहा, "कहाँ कुछ सोचती हूँ। आप सिगरेट पीजिए न।" अनिलदेव बोला, "अच्छी बात है।" और सिगरेट की बत्ती सुलगा कर पीने लगा। एक बार उसकी दृष्टि अभिरामा के मुख पर पड़ी तो अभिरामा ने अपना मुख विपरीत दिशा की ओर फेर लिया। दीवार पर किसी रूसी चित्रकार की तस्वीर ँगी थी जो किसी कारणवश टेढ़ी हो गई थी, उठ कर अभिरामा उसे ठीक करने लगी। जब अभिरामा तस्वीर को सीधा कर रही थी उस समय अनिलदेव उसे ध्यानपूर्वक देख रहे थे। तस्वीर को बिल्कुल ठीक करके जब वह पुनः अपनी कुर्सी पर बैठने के लिये घूमी तो अनिलदेव को उसने आलमारी की ओर देखते पाया जिसमें पुराने साप्ताहिक पत्रों की फाइल पड़ी थीं। उस आलमारी का शीशा ऊपर की ओर से टूट गया था। जिससे यह जानने में लेशमात्र भी कठिनाई नहीं होती थी कि उन पत्रों को सम्भवतः नित्य ही झाड़-पोंछ दिया जाता है। अभिरामा ने पूछा, "क्या देख रहे हैं ?"

"देख रहा हूँ, आलमारी अखबारों से भरी पड़ी है।"

"अचरज का क्या विषय है। कार्टूनिस्ट के घर और क्या होगा !" बोली अभिरामा।

"किन्तु ऐसी क्या बात है। कार्टूनिस्ट के घर केवल अखबार ही हों,

यह कोई जरूरी नहीं और भी चीजें हो सकती हैं। हाँ, अखबार भी रहेंगे ही, इसे मानने को मैं तैयार हूँ।"

अनिलदेव ने कहा और अभिरामा को देखने लगे जैसे वह भी इसके आगे अपनी ओर से कुछ कहेगी, मगर उसने कुछ न कहा। अनिलदेव ने पूछा, "क्यों?" जैसे इस पर कुछ बोलने के लिये वह उसे उत्साह दे रहे हैं। मगर अभिरामा बोली, "सो तो ठीक ही है।"

अभिरामा अपना उत्तर देकर शान्त हो रही और अपना बायाँ पैर तनिक ऊपर की ओर खीच कर घुटने को दोनों हथेली मिला थाम लिया। उधर अनिलदेव अब तक आधा सिगरेट पी चुके थे। अब वह हाथ में सिगरेट पकड़े चुप रहे। एक-एक पल पर सिगरेट जलता जाता और उसकी अस्थि राख बन कर टेबुल पर बिखरती जाती। अनिलदेव अपने समक्ष आलमारी, टेबुल, फोटो, दीवार आदि सबके होते हुए भी शून्य की ओर देख रहे थे। दृष्टि की अन्तिम शक्ति शून्यबिंदु पर जा टिकी थी। वह अपने पर झुंझला रहे थे, कम्युनिस्ट के घर में अखबार हो, हीरा अथवा मोती जो भी हो इस पर आलोचना-प्रत्यालोचना की क्या आवश्यकता? उन्हें अभिरामा के सिद्धान्त की प्रतिक्रिया नही करनी चाहिये थी। न-जानें, अभिरामा ने इसका अर्थ क्या लगा लिया हो।

अनिलदेव बंगाली युवक सुशिक्षित, संस्कृत एवं एक समाचार-वृत्त संस्था के मैनेजिंग डायरेक्टर हे। अभिरामा से मिलने आज वे पहले-पहल आये है। उनका कहना है, यदि अचानक यशोविजय के विलुप्त हो जाने का समाचार उन्हें न मिलता तो शायद वे अभिरामा के यहाँ आते भी नहीं। अभिरामा यशोविजय की धर्मपत्नी है। यशोविजय आज एक सप्ताह से घर से गायब हैं। उनके गायब होने का कारण अज्ञात बतलाया जाता है। अनिलदेव के वार्त्तालाप से ऐसा ज्ञात होता है कि वे केवल अभिरामा को धैर्य दिलाने या सहानुभूति देने नहीं आये हैं, बल्कि यशोविजय के बिना कारण विलुप्त हो जाने से उन्हें महान् कष्ट पहुँचा है। यशोविजय के वे

पुराने मित्र और साथ के पढ़े-लिखे हैं। उन्होंने अभिरामा से यह भी बतलाया है कि उनकी दृष्टि की कसौटी पर इस प्रान्त भर में यशोविजय के साथ का कोई दूसरा व्यंग-चित्रकार नही है। यशोविजय के बनाये हुए सर्वप्रथम कार्टून को उन्होने ही किसी संपादक से कह कर एक पत्र में स्थान दिलवाया था।

अभिरामा का जन्म यद्यपि युक्तप्रान्त के एक मध्यवित्त समाज में हुआ, फिर भी अपने परिश्रम और भाग्य के बल पर उसने किसी भाँति इन्टरमोडियेट तक शिक्षा प्राप्त कर ली है। चित्रकला से असाधारण अभिरुचि है। यशोविजय से उसका विवाह जिस प्रकार सम्पन्न हुआ इसका उल्लेख इस स्थल पर करना आवश्यक नही। उसके पिता हाई स्कूल में आज भी हेडमास्टर है। मैके में साधारण घर और छोटी-सी हैसियत है। उसके बड़ भाई पटना में किसी रिश्तेदार के मकान में रह कर वकालत पढ़ रहे है। उसके और भी छोटे-छोटे भाई है। यदि बड़े भाई वकालत पास कर गये और प्रैक्टिस जमकर चली तो वे भी पढ़ लिख सकेंगे अन्यथा उनका भविष्य अन्धकार ही में है। घर पर का अभिरामा का एक और दूसरा नाम है--"लिटिल"। विवाह में यशोविजय के साथ यहाँ आने के बाद वह कभी मैके नही गई, मगर आज भी मास्टर साहब का जो पत्र आया है वह लिटिल के सम्बोधन से भरा है। उन्नीस वर्ष की अल्पावस्था में उसका जीवन किस तूफानके बीचसे होकर गुजर रहा है—वह जानती है। जब वह अभिरामा बन कर सामाजिक-तत्वों पर विचार करती है तो उसकी दृष्टि में आज के समाज का अस्तित्व जीवन से एक पग नीचे उतरा प्रतीत होता है; वह ऊपर उठना चाहती है, बहुत ऊपर, इतना ऊपर कि कीमती से भी कीमती स्तर पर वह जाना चाहती है, जहाँ अमानुषिकता, बर्बरता, भूख-मरी और इन्सानियत की चीख का नामोनिशान न हो। जहाँ का व्यक्ति कला हो और कला व्यक्ति। जहाँ की कल्पना और अनुभूति दोनों कला-युक्त हों, पिंड का निर्माण तक कला से हुआ हो और उसमें निवास करने वाला ब्रह्मांड भी कला के मध्य ही समाविष्ट हों। प्रत्येक व्यक्ति इतना

भावुक हो कि भावना को वाणी का परिधान न धारण करना पड़े। किन्तु वही अभिरामा अब लिटिल बन कर दुनिया को देखती है तो उसका सम्पूर्ण मस्तिष्क चक्कर खाने लगता है। वह मन में अपने आप कहने लगती है, कलाकार कला का कट्टर समर्थक हो इसका अर्थ यह नहीं कि वह "प्रैक्टिकल" न बने। हमें "प्रैक्टिकल" बनने की आवश्यकता है। एक बार नहीं, हजारों बार कह दिया, कुछ "प्रैक्टिकल" बनो। और अब एकाएक यशोविजय की जुदाई से उसका मानसिक क्लेश और भी बढ़ गया है। आज अनिलदेव के आने से उसे बहुत कुछ शान्ति मिल रही है यह नही कहा जा सकता, मगर थोड़ा अच्छा अवश्य लगा है—यह भी असत्य नही। फिर भी वह भावुक बन कर सोचती है, अनिलदेव के विषय में विशेष कल्पना करना ीक नही, फर्स्ट साइट का निर्णय अधिकतर ठोस नही होता। और फिर निर्णय किस बात की, यह सब बेकार है। कुर्सी पर बै ी अभिरामा को ऐसा लगा जैसे उसके भीतर की अभिरामा उसके सामने खड़ी होकर उससे कोई आवश्यक चर्चा छेड़ रही हो और अब वह यह कह देना चाहती है, धत् तेरी, की, चुप भी रह।" तब तक अनिलदेव ने पूछा, "वे सोते थे किस कमरे में?"

"देखना चाहते हैं आप?" उसने पूछा उठने का उपक्रम करती हुई।

"हाँ, यदि आपको कष्ट न हो तो . . . .।"

"चलिये। आइये न।" बीच ही में अभिरामा बोली। अनिलदेव उठ खड़े हुए। अपने सिर पर खिसकती हुई साड़ी की छोर को सम्हाल कर चाभियों का गुच्छा लिये अभिरामा वहाँ से एक दूसरे कमरे की ओर चली। दूर ही से मालूम होता था, मच्छड़ भनभना रहे हैं। अनिलदेव अभिरामा के पीछे-पीछे चल रहे थे। कमरे के द्वार पर आकर अभिरामा रुक गई और अनिलदेव को देख कर पूछा, "खोल दूं न?"

"नहीं खोलियेगा तो देखूगा कैसे?"

अभिरामा ने काँपते हुए हाथों से कमरे का ताला खोल दिया और दरवाजे की बाली पकड़ कर पीछे ठेलते हुए उसने कहा, "यही है कमरा,

विश्रामगृह कहिये अथवा कला की प्रयोगशाला। वे इसी में सोते और अपनी चित्रकला की एकांत साधना किया करते थे।" अभिरामा के यह कहने पर अनिलदेव भीतर चले गये और बहुत जल्द इधर-उधर देख कर शीघ्र ही बाहर निकल आये। अभिरामा ने पुनः कमरे का द्वार बंद कर दिया।

"आप से किसी तरह की तनातनी तो नही हुई थी?" फिर बै क में आकर अनिलदेव ने पूछा।

इसका उत्तर 'नही' में देकर अभिरामा ने उन्हें बै ने के लिये कहा।

"अब आज्ञा दीजिये।" अनिलदेव ने बिना बैठे कहा।

"मै आपको क्या होकर उत्तर दू। मित्र का घर अपना ही घर होता है। परन्तु ोकने से शायद कोई काम रुक जाये . . . तो . . . .।"

अभिरामा इसके आगे भी कुछ कहना चाहती थी, किंतु अनिलदेव ने बीच ही में कहा, "बहुत ीक कहा आपने। मै चलता हूँ। यशोविजय के विषय में जहाँ तक जानकारी प्राप्त हो सकेगी, करके आपको सूचित करूँगा और बीच में यदि कोई मेरी सेवा की आवश्यकता आ पड़े तो संकोच न कीजियेगा। समझी?"

"अच्छी बात है।" बोली अभिरामा।

अब अनिलदेव बै क से बाहर निकलने लगे। अभिरामा भी पीछे-पीछे ार तक आयी और उसने कहा, "बहुत कष्ट हुआ होगा आपको।"

"जी, इसमें कष्ट की क्या बात। यह तो हमारे भाई-चारे की समस्या है।" अनिलदेव बोले।

"अच्छा, नमस्कार।" अभिरामा ने हाथ जोड़ा।

बहुत झुक कर 'नमस्ते' कहते हुए मैनेजिंग डायरेक्टर सीढ़ी से नीचे उतरे और जाने लगे। अभिरामा देर तक वही खड़ी-खड़ी न-जानें किस दृष्टि से सड़क पर आते-जाते विशाल जनसमूह को देखती रही। मोटरों का हॉर्न और रिक्शा की घंटी उसे उस क्षण सुनायी नहीं दे रही थी।

(२)

बी० ए० पास करने को तो वनजा ने पास कर लिया, मगर उसके सामने अब एक प्रश्न यह आ खड़ा हुआ कि वह बी० एल० ज्वायन करे अथवा एम० ए०,बी० एल० दोनों। पति महोदय को किसी भी परिस्थिति में कोई संकोच नही था। उसकी शिक्षा के निमित्त वे सदैव रुपये व्यय करने को प्रस्तुत थे। एडमिशन के दिनो में पति-पत्नी में बहस छिड़ गई। वनजा ने बी० ए० इंगलिश आनर्स लेकर पास किया था। वह पति से बतलाती कि उसे सर्वप्रथम अंग्रेजी में एम० ए० कर लेना चाहिये। और पति बतलाते कि यदि एम० ए० के साथ-साथ बी० एल० भी हो जावे तो अच्छा रहेगा। इस पर वनजा विरोध करती, नही,वकालत पास कर इन्सान न्याय की दूकान लेकर कोर्ट में जाता है, जहाँ चाँदी के खनकते हुए टुकड़े लेकर वह ईमान और न्याय दोनों बेचता है। वादी हो अथवा प्रतिवादी जिसने उसकी जेब भर दी वह उसकी सिफारिश कर देगा। मनुष्य जब झूठ बोलता है तो वह यह जानता है कि झूठ बोल रहा है, मगर उस 'झू ' का व्यवहार करने के पहले वह अनेकों तर्क तैयार कर लेता है। असत्य को सत्य का रूप देते हुए श्रोता के समक्ष वह एक ऐसी सूक्ष्म रेखा खींच देता है कि वह उसे धीरे से पार कर आगे, जब बहुत आगे बढ़ जाये तब शायद श्रोता उसे देख सके। कोर्टमें कानून के कानसे न्यायाधीश वकील की सारी बातें सुनता अवश्य है; किंतु क्या वह यह नही जानता कि इसने मुवक्किल से अवश्य ही रुपये लिये होंगे चाहे वह अपनी खुशी से दिया हो अथवा मर कर। कानून के प्रकोष्ट में सत्य का तिरस्कार किया जाता है। नही, वह वकालत नहीं पढ़ेगी। अंग्रेजी में एम० ए० करेगी। यदि परमेश्वर की कृपा से फर्स्ट क्लास आ गया तो प्रोफेसरी तो रखी हुई है। यही महिला कॉलेज में बराबर 'वकेन्सी' हुआ करती है। और फिर फर्स्ट क्लास आने पर परेशानी की कोई आवश्यकता नही।

इस प्रकार वनजा ने अपने विचार पढ़ाई के सम्बन्ध में अनिलदेव के सामने प्रकट किये, मगर अनिलदेव ने कहा, "नही, वकालत भले ही न

करना। मगर परीक्षा तो अवश्य पास कर लो। योग्यता पास रहती है तो उससे लाभ ही होता है, हानि नहीं।"

"मुझसे डबल कोर्स कम्प्लीट नही हो सकेगा।" वनजा ने आखिरी दाँव लगाया। इस पर अनिलदेव गंभीर पड़ गये और अंत में उन्होंने वनजा की बात मान ली। सो अब वह स्थानीय यूनिवर्सिटी में एम० ए० की छात्रा है। अनिलदेव चितक है या नही, इसके लिये कोई विशेष प्रमाण नहीं दिया जा सकता; किंतु विवाह के पश्चात् जब से वनजा उनके साथ रह रही है वे उसके व्यक्तित्व के साथ मानसिक तर्क करना चाहते है। मगर जहाँ तक उन्हें स्मरण है सुहागरात से लेकर आज तक वनजा ने ऐसी परिस्थिति ही नहीं आने दी है जिससे कोई मानसिक संघर्ष पैदा हो और अपने तार्किक विकास को दोनो एक दूसरे के सामने खोल सकें। परिस्थिति पैदा करने का साहस रखने वाला व्यक्ति भी परिस्थिति के अस्तित्व का लोहा मानता है। क्योंकि जैसी परिस्थिति वह पैदा करना चाहता है उसके पैदा करने के पूर्व की परिस्थिति ने उसे सहयोग न दिया तो वह वैसी परिस्थिति का निर्माण करने में सर्वथा असफल रहेगा।

वनजा के दैनिक जीवन-क्रम में कहाँ तक बनावट और कहाँ तक वास्तविकता है यह कहना भी कठिन है। न वह अधिक सहज है और न अधिक गंभीर। न उसमें उच्छृंखलता है न विशेष लज्जा। सौन्दर्य असाधारण प्राप्त है—मेनका की स्मृति-सी। फिर न अधिक समय श्रृंगार म लगाती है न फुहड़ ही है वह। अनिलदेव से मिलने बहुत से लोग आते है, नाते-रिश्ते है, मगर किसी के प्रति न उसमें आसक्ति है और न विकर्षण की वृत्ति। सबका वह समान भाव से स्वागत करती है। अस्तु!

रात्रि के आठ बजे थे। पक्का ऑगन का चबूतरा था। वनजा का यह प्रण था अथवा व्रत,नहीं कहा जा सकता, पर वह लगभग रात के दस बजे तक उस चबूतरे पर तुलसी-वृक्ष के समीप घी का दीप अवश्य जलाती। अभी जलते-जलते दीपक से घृत समाप्त हो चुका था। वनजा उसमें घृत

डाल रही थी कि बाहर से अनिलदेव ने दरवाजा ख खटाया। घी का डब्बा वनजा के हाथ में हिल गया। डिब्बे को वही चबूतरे पर रखती हुई बोली, "आयी जी।"

घी से युक्त दीपशिखा लहराती रही चबूतरे पर। अनिलदेव का स्वर सुन कर वनजा में किसी प्रकार का परिवर्तन विशेष न हुआ, न उसकी मनःस्थिति किसी भी रूप में बदली। उसने आकर द्वार खोला तो अनिलदेव उसे ध्यानपूर्वक देखने लगे। वनजा ने उनकी ओर आँखें उठा कर कहा, "चलो, जरा दीप जला रही हूँ।"

"चलो!" कह कर अनिलदेव आगे आँगन की ओर बढ़े। वनजा ने द्वार भिड़का दिया और उनके पीछे-पीछे आँगन मे आकर ीप तुलसी वृक्ष के नीचे सम्हाल कर रखने लगी। अनिलदेव घर में आकर कपड़े बदलने लगे। कुछ देर पश्चात् वनजा भी वहाँ पहुँची। उसके आते ही स्थिर भाव से अनिलदेव ने कलाकार यशोविजय के एकाएक विलुप्त हो जाने की चर्चा करते हुए कहा, "यंग वाइफ है उसकी, सोच रहा हूँ उसकी क्या दशा होगी। तुम्हारा क्या विचार है उसके बारे में। यहाँ तो वह नहीं ही रह सकती . .।"

अनिलदेव का अंतिम वाक्य पूर्ण होते हुए भी क्षीण-सा हो गया। वे रूके ऐसे, जैसे यह कहना उचित नही था। तब तक वनजा ने कहा, "पूछ कर देखिये क्या कहती है।" अनिलदेव चुप रहे।

(३)

व्यक्ति का आदर्श चाहे जितना भी सुदृढ़ क्यों न हो ; किंतु उसके व्यक्तित्व में कहीं-न-कहीं एक प्रकार की कमजोरी अवश्य ही छिपी होती है। सम्भव है व्यक्ति उसे न समझ सके, लेकिन हृदय के कोने में एक स्थल पर वह विद्यमान रहती है। न्यूज एजेन्सी के कार्यवश अनिलदेव को दिल्ली आना पड़ा, क्योंकि हेड ऑफिस यहीं है और कुछ कारण के रहते यहाँ लगभग

दो सप्ताह रुक जाना पड़ा। अभिरामा के विषय में उनका विचार है, अधिक नहीं सोचना चाहिये। फिर भी कोई ऐसा दिन खाली नहीं गया जिस दिन वे उसके बारे में अपने मस्तिष्क से तर्क न किये हों। यशोविजय के इस कर्म के पश्चात् उसे लेकर भी उनके भीतर साधारण द्वन्द्व है यह बात भी नहीं। वे बार बार सोचते हैं, उसे ऐसा नहीं चाहिये था। ऐसी गृह-लक्ष्मी बड़े भाग्य से मिलती है। उसे छोड़ कर यों ही भाग जाने की क्या आवश्यकता थी। वह कलाकार है, अपनी आत्मानुभूति को एक जगह बाँध कर रखना पसन्द नहीं करेगा, यह भी उचित है, परन्तु अभिरामा उसकी कला से कम प्रेम नहीं करती। वह भी चित्र बनाती है, तूलिका की भाषा समझने का प्रयास करती है। आर्थिक संकट के अलावे विधि ने कोई अन्य व्यवधान इनके बीच नही डाला, जिससे दोनों एक दूसरे से भिन्न रहना चाहते हों। दफ्तर में मिलने पर वार्त्तालाप के सिलसिले में स्वयं यशोविजय ने भी बतलाया है कि वह अपनी पत्नी से पूर्णतया संतुष्ट है।

पूरे अठारह रोज दिल्ली रह लेने के बाद अनिलदेव ने फुर्सत पा ली और अब वह दिल्ली स्टेशन पर आये। समय हो चुका था ट्रेन का। उनका सामान लेकर कुली प्लैटफॉर्म की ओर बढ़े और कार वापस चली गई। सिटी बुकिंग ऑफिस से अनिलदेव ने टिकट पहले ले लिया था। प्लैटफॉर्म पर धीरे-धीरे दो चार चक्कर देने के बाद यात्रियों से खचाखच गाड़ी आ धमकी। कुली ने अनिलदेव का सारा सामान प्रथम श्रेणी के डब्बे में चढ़ा दिया। वे भीतर जाकर स्थिरतापूर्वक बैठ रहे।

पव फट रही थी। पूर्वाकाश से भगवान अंशुमाली की रक्तवर्ण किरण-राशि विकीर्ण होना चाहती थी। प्लैटफॉर्म पर खोनचे वालों के शोरगुल, यात्रियों की दौड़-धूप और लम्बे-चौड़े विस्तृत स्टेशन का मनोहर दृश्य देखते ही बनता था। दो पैसे प्याली वाली चाय पर थर्ड क्लासके पासिंजर टूट रहे थे। ऐसी बात नहीं कि उनमें दो आने कप चाय पीने की इच्छा नहीं, परन्तु कहाँ दो पैसे, कहाँ दो आने! गरीब इन्सान के लिये एक पैसा ही

उसकी जिन्दगी से बढ़ कर होता है। सामने रेस्टुरेन्ट से बेयरा ट्रे में जलपान का सामान लिये निकलता था, वे उसे देखते रह जाते थे; पर, पैसे न रहने पर भी भावुकता इतनी है कि जी भर कर देख भी नही सकते। देखते समय कोई यह न समझ ले, लालचवश उधर देख रहा है। दिल्ली आकर अनिलदेव ने वनजा के लिये शृङ्गार की वहुत-सी वस्तुएँ खरीदी थीं। वे बर्थ पर बैठे खिड़की से पीठ सटाये सोच रहे थे, इन सारी चीजों में वह सबसे अधिक किसे पसन्द करेगी। तब तक दरवाजे पर आ गया बेयरा।

"ब्रेकफास्ट सर !" उसने कहा।

". . . . ।" अनिलदेव ने शायद सुना नही।

"ब्रेकफास्ट हुजूर !"

बेयरा ने विनीत स्वर में कहा। अनिलदेव विचारग्रस्त थे। उन्हें बेयरा के प्रश्न का कोई ध्यान न था।

"ब्रेकफास्ट चाहिये हुजूर !" इस बार कुछ दीर्घ स्वर में बेयरा ने पूछा। अनिलदेव का ध्यान भंग हुआ। उन्होने उसकी ओर फिर कर पूछा, "क्या पूछते हो ?" बेयरा ने कुछ न कहा। वह इनका मुँह देखता रहा। उसकी आँखे अनिलदेव पर आश्चर्य प्रकट कर रही थी। वे उसे इस भाँति देख रहे थे जैसे सोकर जगे हों। बाद में बोले, "हाँ, ले आओ अंदर।"

एक संकेत-मात्र काफी था। बेयरा भीतर प्रवेश कर गया। ट्रे उसने बर्थ पर रखा और फिर चला गया। जलपान कर चुकने के पश्चात् अनिलदेव चाय बनाने लगे। प्याले में चाय दूध, आदि डाल चुके थे। चीनी मिलाना शेष रह गया था। वे अन्यमनस्क-सा सामने कुछ दूर अखबार पढ़ते हुए एक व्यक्ति की ओर देखने लगे। चम्मच में चीनी थी। उनका हाथ कँपा, भाव-भंगिमा पर कौतुहल के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए, भृकुटियों में बल पड़े, और चीनी से भरा चम्मच हाथ से नीचे गिर पड़ा। पास बैठे मुसाफिरों ने तनिक भावुकता की दृष्टि से उन्हें देखा, कुछ समझे भूलवश ऐसा हुआ। पर, दूसरे ही क्षण अनिलदेव डब्बे से बाहर निकल आये और उस व्यक्ति की

ओर बढ़े । नहीं, नहीं, उन्हें भ्रम क्या होगा । निश्चय ही वह यशोविजय है । बिल्कुल यशोविजय है, साक्षात् यशोविजय ! वे बढ़ते गये, वही तो है, यशोविजय । वे क्या उसके बड़े-बड़े बाल हैं । गौर वर्ण, उन्नत ललाट, रेशम-सा कुंचित केश-पाश पीछे की ओर असावधानी से फेरा हुआ, जो कलाकार होने का प्रतीक है, मलमल-का ढीला-सा कुरता और पटलीदार धोती । कोई उन्हें कहे कि वह यशोविजय नहीं है तो वे मानने को ैयार न होंगे । वे अवश्य यशोविजय को आज पकड़ लेंगे और घर ले जाकर एक अभियुक्त की भाँति उसे अभिरामा के सामने प्रस्तुत करेंगे । कितना निर्मम है वह ! एक निर्दोष को छोड़ कर क्यों लापता हो गया । उसने कैसा अभियोग किया है । उसने अभिरामा के शील और स्वभाव का अनादर किया है । वह कलाकार क्या है जो अपनी धर्म-पत्नी को भी नहीं पहचान सका । क्या उसकी भावुकता अखबार के व्यंग-चित्रों तक ही सीमित है ? अच्छा आज पता चलेगा यशोविजय को । लाख नाक रगड़ेंगे मगर वे बिना साथ लिये गये छोड़ेंगे नहीं । अनिलदेव बढ़ते चले जा रहे थे । बिल्कुल वही है । अब वे पकड़ लेंगे उसे । अब पुकारा, तब पुकारा । हाँ, जरा गला साफ कर लें । मगर यह क्या, यशोविजय तो बीस कदम आगे बढ़ गया । वह जा रहा है, वह । अनिलदेव और आगे बढ़े । मगर यशोविजय ने उन्हें देख तो नहीं लिया है । वह भी आगे ही चला जा रहा है । वे परेशान हो रहे हैं । अब वे थक रहे हैं । वह इस प्लैटफॉर्म पर से उस प्लैटफॉर्म पर गया । पीछे-पीछे दौड़ लगाते वे भी चले जा रहे हैं । इस प्लैटफॉर्म पर से वह पुल की ओर बढ़ा । वे भी उधर चले । वह पुल की ओर से मुड़ कर दूसरी ओर चला । अनिलदेव भी उधर बढ़े । वे काफी आराम-तलब व्यक्ति हैं । वे थक गये हैं । वे भूल गये हैं ट्रेन के डब्बे में बेयरा बिल लिये ढूंढ़ रहा होगा । चाय ठंढी पड़ गई होगी । ये दिल्ली का प्लैटफॉर्म है, रेलवे का वर्कशॉप नहीं जो इंजिन और गाड़ी के डब्बे किसी अनिश्चित काल तक पड़े रहेंगे । ट्रेन खुलने का समय हो गया है । मगर उन्हें कुछ भी ध्यान नहीं । वे यशोविजय को पकड़ेंगे । कहाँ भाग

सकता है वह। अनिलदेव को सूझता खूब है, वे अन्धे नहीं हैं। यशोविजय उनकी आँख में धूल नहीं झोंक सकता। अहा, वह तो जा रहा है। वह प्लैटफॉर्म से बाहर जा रहा है। अब वे पुकारेंगे। दो क्षण के बाद। यशोविजय रुक कर किसी से बातें करने लगा। उन्हें विश्वास हो आया—इस बार वे उसे अवश्य पकड़ लेंगे। जब पास आने को केवल दस पग बाकी रह गये तो उन्होंने पुकारा, "यशोविजय ?" " . . . . ।" कोई उत्तर नहीं मिला। अरे, तो क्या इतना समीप आकर भी वह अनिलदेव से बच जाना चाहता है। यह नही हो सकता। वे उसके पीछे आकर खड़े हो रहे और बलपूर्वक उसकी बाँह झकझोरते हुए कहा, "यशोविजय, मुझे यह मजाक अच्छा नहीं लगता।"

दूसरे क्षण यशोविजय ने फिर कर उन्हें देखा। वे आश्चर्य से भर गये। उनके मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। वे सकपका गये। कारण, जिस पुरुष को उन्होंने यशोविजय समझ कर उसे पुकारा था, वह यशोविजय नही, कोई अन्य नागरिक था। स्वयं घबड़ा कर उस नागरिक ने पूछा, "है, किसे चाहते हैं, आप ?"

"क्षमा कीजियेगा। मेरे एक मित्र भी ठीक आप ही की शक्ल-सूरत के हैं। मैंने समझा वे ही खड़े हैं। क्यों, आप मुझे क्षमा न करेंगे ?" बोले अनिलदेव।

"अजी, इसमें क्षमा की कौन-सी बात है। यह कोई नई घटना नहीं। सन्देह में अक्सर ऐसा हुआ करता है।" कह कर वह व्यक्ति मुस्कुरा पड़ा।

"अच्छा, चलता हूँ।" अनिलदेव ने कहा। वे शर्म से गड़े जा रहे थे। उस आदमी के पास से अलग होकर वे अपने डब्बे की ओर लौटने लगे। मार्ग में उन्हें यशोविजय पर क्रोध आने लगा। यदि कभी मिल गये तो इसका भी मीठा-मीठा बदला लिया जायगा। वह तो था सज्जन जो कुछ बोला नहीं; दूसरा होता तो झगड़ा ही कर बैठता। उन्होंने घड़ी पर दृष्टि डाली। ट्रेन के खुलने में केवल एक मिनट देर थी। वे दौड़ने लगे। डब्बा

के फाटक तक पहुँचते-पहुँचते गार्ड ने झंडी दिखलायी, सीटी बजा दी। वे परेशान होकर फाटक पर पिल पड़े।

"यह बिल है हुजूर!" बेयरा ने कहा। वह खड़ा था।

"कितने, बोलो।"

इसके बाद अनिलदेव ने सुना नहीं, बेयरा ने कितना बतलाया है। उन्होंने एक दस रुपये का नोट उसके आगे फेंक दिया। गाड़ी चल पड़ी। बेयरा प्लैटफॉर्म पर ही रह गया। अब अनिलदेव को और भी अधिक ग्लानि होने लगी। वे बर्थ पर लेट रहे। ट्रेन द्रुतगति से चलती चली जा रही थी। अभिरामा कितना आह्लादित हो उठती यदि वे यशोविजयको लेकर उसके घर जाते। किंतु अब किया क्या जायगा। यशोविजय को नही मिलना था नही मिला। परिस्थिति के पद-चिन्हो पर विचारों का व्यक्ति अपनी मंजिल तय करता है। तर्कोन्मुख होकर कोई व्यक्ति भवितव्य के सत्य को नहीं बदल सकता। जिसे होना है, वह होकर ही रहता है। जो निश्चय है, वह अनिश्चय नही हो सकता। होनहार होने को ही है, नही होने को नही। यदि वह समस्या है तो स्वयं एक हल भी; जीवन-मरण की भाँति। शासन का विधान बदल सकता है, जीवन-मरण की व्यवस्था नहीं बदल सकती।

इन सारी बातो के सोच लेने के बाद भी यशोविजय का नहीं मिलना अनिलदेव को खटकता रहा। उनके सामने अभिरामा की निराश मंजुल छवि चित्रपट की भाँति आकर चली गई। उन्होंने करवट बदल ली। चलती ट्रेन में प्रवेश करती हुई हवा से उनके बाल धीरे-धीरे लहराने लगे।

(४)

उस दिन बिदा लेते समय अनिलदेव अभिरामा को यह कह आय थे कि कोई आवश्यक कार्य पड़ने पर वह उन्हें बुलाने में संकोच न करेगी।

दिल्ली जाते समय अवकाश के अभाव में अपनी दिल्ली-यात्रा के विषय में उसे सूचित तो न कर सके ; किंतु वनजा को यह बतला गये थे कि यदि यशोविजय की पत्नी कोई खबर दे अथवा बुलावे तो बहुत ही संतोषजनक उत्तर देगी। दिल्ली से लौट कर आते ही उन्होंने वनजा से अभिरामा के विषय में पूछ-ताछ की। वनजा ने बतलाया कि उन्होंने न कुछ कहला भेजा और न बुलाया ही। इस पर अनिलदेव गुम-सुम रहे, कुछ बोले नहीं। इसमें वनजा का भी कोई दोष नही। ऑफिस के समय के एक घंटा पूर्व ही वे घर से चल पड़े। वनजा भी कॉलेज जाने को तैयार थी। जन-पथ पर अपनी मोटर साइकिल दौड़ाते हुए अनिलदेव सोच रहे थे, दिल्ली में ठीक यशोविजय जैसा ही एक आदमी के मिलने की बात अभिरामा से कहना अच्छा नही होगा। अधिक सम्भव है इससे उसके मर्म पर आघात पहुँचे। यशोविजय का नाम-मात्र ही उसे सुनना अच्छा लग सकेगा या नहीं, पहले इसी में सन्देह है। वह कोई भी बात बहुत अधिक सोचती है, ऐसा ज्ञात होता है।

मोटर साइकिल जब अभिरामा के द्वार पर आकर रुकी तो उन्होंने देखा, दरवाजा खुला है। एकाएक ऐसा विचार उदय हो आया कि सम्भवतः यशोविजय घर वापस आ गया है। वे सीधे घर में यशोविजय का नाम लेते हुए प्रवेश कर गये। अंदर अभिरामा आलमारी में रखे हुए उन प ों को झाड़-पोंछ रही थी जिनमें यशोविजय के बनाये कार्टून प्रकाशित हुए थे। उसका मुख विपरीत दिशा की ओर था। और साड़ी माथे तथा वक्षस्थल से नीचे की ओर हट आयी थी। उसने झाड़ते हुए अखबार को छोड़ कर साड़ी सम्हालने का प्रयास करते हुए पूछा, "किसे चाहते हैं आप ?" उसे इस अवस्था में देख कर अनिलदेव जहाँ तक आ सके थे, वहीं क गये। अभिरामा ने अपना मुख इनकी ओर फेरा नहीं। उसने शरमा कर सर्द आवाज में कहा, "उनसे भेंट न होगी। वे घर पर नहीं हैं।" अनिलदेव से इसका प्रतिकार न हो सकता था। वे उसकी मनोदशा पर विचार करने लगे थे। वह उन्हें पहचान क्यों न सकी है, तीन-चार बार उसने यशोविजय

का नाम लिया है। ऐसी बात भी उसके साथ नहीं है अनिलदेव का स्वर उसने सर्वप्रथम सुना हो। दिल्ली जाने के पहले घंटों बातचीत हो चुकी है। यशोविजय की अचानक अनुपस्थिति के कारण इसकी मन:स्थिति में निश्चय ही एक विकृति उत्पन्न हो गई है। इस समय मिलना अथवा अपने को साक्षात् करना अच्छा न होगा। इस विचार को ध्यान में रख कर मध्यम स्वर में अनिलदेव ने कहा, "अच्छी बात है। फिर कभी आऊँगा।" और लौटने लगे। उनके पीछे मुड़ते ही साड़ी से माथा और वक्ष ढ़ाँक कर अभिरामा ने इनकी ओर देखा और देख कर सहसा पुकारा, "अनिल जी, आप ? आइये . . . . मैं पहचान न सकी . . . सुनिये तो।"

अनिलदेव जाते-जाते रूक गये, अभी लौटे भी नही। अभिरामा ने कहा, "क्षमा कीजियेगा। झसे गलती हो गई। और मैं . . . आइये बैठिये न।" कह कर वह बेंत की कुर्सी जो अपने स्थान से कुछ दूर हट गयी थी उसे वहाँ रखने लगी। अब अनिलदेव उसके समीप आ गये और पूछा, "आप यह क्या कह रही थी, और मैं ?" उत्तर में अभिरामा बोली, "बैठिये भी तो पहले।" वह खुश दीख पड़ी पर दूसरे ही क्षण अनिलदेव ने देखा कि उसकी सारी खुशी गम्भीरता में परिणत हो गई। उसकी दृष्टि सीधे टेबुल पर जा जमी। वह मौनवत् हो रहीं। अनिलदेव ने उसका ध्यान न तोड़ा। एक मिनट मूक रह लेने के बाद उसने स्वयं पूछा, "क्यों, आप इस प्रकार चुप क्यों ?"

"हाँ, कहिये न।" बोले अनिलदेव। उनके मुखमंडल पर एक प्रश्न-चिन्ह खिच-सा गया। आप तो स्वयं चुप हो गईं, उल्टे मुझ से क्यों पूछ रहीं हैं ? मगर वे कह न सके। अभिरामा बोली, "मैं यह कहना चाहती थी कि ध्यान दूसरी ओर रहने के कारण यदि मैं आपको न पहचान सकी तो आप भी जाने लगे। और आप तो जानते हैं कि वे हैं नहीं तो उनका नाम कैसे लिया और जाते वक्त ऐसे बोले, फिर मिल लूगा। बोलिये, वे कहाँ हैं जो आप फिर मिल लेते ?"

वास्तव में अभिरामा के ये शब्द अनिलदेव को बड़े ही मार्मिक प्रतीत हुए। मगर उन्होंने अपने को संयत कर कहा, "नहीं, दरवाजा खुला था। मैंने समझा, वे आ गये हैं। और आपको अधिक कार्यव्यस्त देख ऐसा कह कर लौटने लगा। आप कुछ दूसरा अर्थ न समझ लेंगी।"

"वाह! ऐसा भी कहीं होता है। आदमी चाहे जितना भी कार्यव्यस्त क्यों न हो किसी के आने पर उसका स्वागत् अवश्य करेगा, अधिक नहीं किंतु जो आवश्यक बातें है वह तो की ही जा सकती है। आपके लौटने की कोई आवश्यकता ही न थी।" बोली अभिरामा फिर पास की कुर्सी पर वह स्वयं बैठ गई। अनिलदेव से कुछ कहते न बना। उन्होंने मन-ही-मन अभिरामा को स्वीकारोक्ति का संकेत दिया। आगे प्रसंग बदलने के लिये बोले, "बीच में कैसी रही आप, मै तो बाहर चला गया था।" अभिरामा ने पूछा, "क्यों यहाँ नही थे आप?" अनिलदेव को अभिरामा का यह प्रश्न, न जानें, कैसा लगा। पर वे बोले, "ऑफिस का काम पड़ गया था।"

"कहाँ गये थे ?"

"दिल्ली।"

"क्या-क्या ले आये दिल्ली से . . . . हटाइये छोड़िये यह बात। मैं यह पूछ रही थी कि बीच में मैंने आपको किसी प्रकार की सूचना नहीं दी इसके लिये आप कुछ बुरा तो नहीं मानेंगे ?" प्रश्न कर चुकने के बाद वह मुस्कुरा पड़ी और एक जिज्ञासा की दृष्टि अनिलदेव पर डाली। विषय कोई हास्य का न था, वह फिर अनावश्यक मुस्कुरा क्यों पड़ीं, छोड़ो अपनी-अपनी आदत होती है। अनिलदेव ने सदैव अपने को संयत रखना चाहा और इसी प्रकार उसे उत्तर देने लगे, "नहीं जी, इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं। मगर इस हालत में मुझे दुःख अवश्य होगा यदि मेरी आवश्यकता पड़ने पर आप मुझे खबर न दी होंगी। मैं समझता हूँ, इधर बीच में कोई परिवर्तन न हुआ।"

"परिवर्त्तन !"

"हाँ, मेरा मतलब कि उनके विषय में आपको कोई खबर न मिली है।"

"मगर इस बात की सूचना मैंने अपने पिताजी को दे दी है।" बोली अभिरामा, "क्या ख्याल है आपका मैंने यह कोई बुरा तो नहीं किया ?"

"यह मैं कैसे कहूँ ! पत्र लिखने के पहले आपने कम सोच-विचार किया होगा, ऐसी बात तो है नहीं। और यदि मेरा व्यक्तिगत विचार जानना चाहती हैं तो मैं यह कहूँगा कि यह आपने कुछ बुरा तो नहीं किया।" बोले अनिलदेव। अभिरामा ने विचित्र तरह से जोरों से हँस कर पूछा, "हाँ, ठीक कहते हैं आप ?"

इस बार अनिलदेव की मुखाकृति ऐसी हो गई जैसे वे झेंप गये। वे बोले, "हाँ, मैंने अपने विचार से कहा है।" अभिरामा ने कहा, "आपने अपना स्वतन्त्र विचार देकर अच्छा ही किया। पिताजी ने मेरे पत्र का उत्तर भी दे दिया है। बतलाऊँ आपको, उन्होंने क्या लिखा है ?"

"बतलाइए।"

"नहीं, पहले आप यह कहिये न कि आप उनका उत्तर सुनना चाहते हैं ?"

"क्यों, मैं अपने कान कहाँ बंद कर रहा हूँ।" अनिलदेव ने कहा। अभिरामा तनिक और सम्हल कर बैठ गई और बोली, "तो सुनिये। पिता जी ने मुझे लिखा है कि मैं यहाँ ताला लगा कर उनके पास चली जाऊँ। क्या अनुमति देते हैं, आप ?"

"देखिये, यह विषय तनिक कठिन है। यह पारिवारिक समस्या है। आप जो उचित समझें, करें। कोई आपत्ति न हो तो आप जा सकती है।" बोले अनिलदेव और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। अभिरामा ने पूछा, "तो मैं चली जाऊँ ?"

"मैंने कहा तो। अपना सोच लीजिये।" अनिलदेव ने उत्तर दिया। सिगरेट का धुआँ बैठक में चारों ओर फैलने लगा। वह बोली, "लेकिन इस

मकान की क्या हालत होगी। कोई इसकी देखभाल करने वाला न होगा। बरसात के दिनों में पानी गिरने लगा तो क्या होगा ? बिना आदमी का घर भूतों का बसेरा हो जाता है। बारिश का मौसम आ रहा है। वे थे तो कोई बात नहीं थी। मेरे नहीं रहने पर सावन में भी इस मकान में लू की लपट चलेगी, भादो की घनी अँधियारी रात्रि में घर का एक-एक कमरा एकान्त होकर झन्नाता रहेगा। मेरे सास-श्वसुर की यह शेष स्मृति वीरान-सी हो जावेगी। क्यों, क्या सोच रहे हैं आप ? क्या मैं जो कुछ भी कह रही हूँ वह सब असत्य, तथ्यहीन कह रही हूँ ?"

"नहीं, ठीक ही कह रही हैं आप।" अनिलदेव ने धीमे स्वर में कहा।

"मगर आप यह ध्रुव सत्य जान लीजिये कि मैं इस घर को यों ही छोड़ कर नहीं चली जाऊँगी। आप क्या चाहते हैं, मैं चली जाऊँ ?" अभिरामा ने अधिक सतर्कता के स्वर में पूछा। अनिलदेव ने समझा, यह उत्तरदायित्व शायद उन्ही के ऊपर लादा जा रहा है। वे बोले, "इसमें मेरे चाहने की कोई बात नहीं। आपको जहाँ शान्ति मिले आप वहाँ रह सकती हैं।"

"तो देखिये। मैंने पिताजी को पत्र-वत्र कुछ नहीं भेजा है। न उनका कुछ उत्तर आया है। हाँ, लिखा अवश्य था, मगर उसे डाक में नहीं डलवाया। वह पत्र देखिये, पड़ा है मेरे पास।" ऐसा कह कर अभिरामा ने टेबुल के ड्रॉयर से एक लिफाफा निकाल कर अनिलदेव के आगे रख दिया और बोली, "आप इसे पूरा पढ़ जाइये।"

"नहीं, इसे मैं क्यों पढ़ लूँ।" लिफाफा स्पर्श कर बोले वे। इस पर जोर देकर अभिरामा ने कहा, "नहीं, आपको मेरी शपथ है। आपको पढ़ना होगा।" बोलते-बोलते अभिरामा की दृष्टि उस क्षण अनिलदेव की रिस्ट-वाच पर पड़ी। दफ्तर का समय हो गया था। वह उठ कर बोली, "ओह, आपके दफ्तर का समय हो गया। आप इसे लेते जाइये। अवकाश निकाल कर वहीं पढ़ लीजियेगा, और यदि कष्ट न हो तो लौटते समय आ जाने का कष्ट कीजियेगा।" यह सून, लिफाफा लेकर अनिलदेव बाहर आ गये।

(५)

चन्द्रविभामय अवनि-अम्बर ! पूर्णचन्द्र की पावन रात्रि ! नीरवता से भरा ग्यारह कमरों का वह लम्बा-चौड़ा मकान इस एकाकीपन में अभिरामा को शायद स्वर्ग-सा भा रहा था। आँगन में एक आराम कुर्सी पर लेटी वह मीरा का कोई पद गा रही थी कि द्वार पर से किसी के पुकारने का स्वर सुनायी पड़ा। स्वर परिचित था। उसने पद गाना छोड़ कर अपने कान बंद कर लिये जैसे पुकारने वाले व्यक्ति का आना बड़ा बुरा हुआ, उसे बहुत खटका।

"खोलिये न।" आवाज पुनः आयी।

". . . .।" चुप रही अभिरामा और इसी प्रकार तीन-चार बार पुकार लेने के बाद वह व्यक्ति निराश हो गया और उसने नैराश्यपूर्ण ढंग से कहा, "मत खोलिये, अब जाता हूँ।"

मगर यह दावा वे गलत करते हैं। वे बिना उसकी अनुमति के, बिना उससे भेंट किये जा कैसे सकते हैं। वे आधी राह जाकर लौट आयेंगे। अभिरामा का स्नेह, उसकी करुणाजनक दशा उन्हें जाने न देगी। उनमें इतनी शक्ति कहाँ है जो वे आगे बढ़ते जायेंगे। नही, वे ऐसे नही जा सकते। वह कान खोल देगी। वह उन्हें रोकेगी, पुकारेगी। दरवाजे से कुछ दूर चले गये होंगे तो आवाज देकर चिल्लायेगी, परन्तु उन्हें अपने घर में लायेगी जरूर। और तब उसी क्षण उसने अपने ढंके कान खोल लिये और दौड़ कर दरवाजा खोलने चली। वह दरवाजे की ओर वायु-वेग से बढ़ती आ रही थी। उसने आकर द्वार खोला तो देखा वे जाने का उपक्रम कर रहे हैं। वह बिल्कुल उनके समीप आकर बोली, "यह क्या अनिलदेव, आप मुझसे नाराज होकर चले जा रहे हैं, यह क्यों ? कहिये न, मैंने आपके साथ कौन-सा अपराध किया है। सिर्फ इतना ही तो कि आपने पुकारा और मैंने उत्तर नहीं दिया, या इससे भी अधिक कोई अपराध किया है मैंने। आप चलिये बैठिये। आप जाना भी चाहेंगे तो मैं आपको रोकूंगी।"

"नहीं, नहीं, आप इस प्रकार अधीर क्यों हो रही हैं ?" अनिलदेव ने कहा।

"इससे आपका मतलब ?" पूछा, अभिरामा ने। अनिलदेव बोले, "मतलब मैं तो आप से ही मिलने आया हूँ। इस प्रकार अधीर होने की कोई आवश्यकता नहीं।"

"सच कहते हैं आप ? आप मुझसे ही मिलने आये हैं। यह तो अहो-भाग्य है मेरा।" अभिरामा तब धीर भाव से बोली। अनिलदेव चुप अभिरामा का मुख देखते रहे। वे प्रतीक्षा कर रहे थे। जब वह उन्हें अंदर चलने के लिये कहे तब वे कदम बढ़ावें। अभिरामा ने सशंकित भाव से पूछा, "तो चलिये। अंदर बैठियेगा तो ?"

"क्यों, बैठूगा क्यों नहीं।"

"तो चलिये। सड़क पर कितने लोग आ-जा रहे हैं। सोचेंगे, इन्हें घर नहीं है क्या। अनावश्यक यों ही दरवाजे पर क्यों खड़े हैं।" ऐसा कह कर उसने अनिलदेवको अंदर चलनेके लिये इस प्रकार संकेत किया कि उन्हें लगा, अब वह उनका हाथ पकड़ लेगी, किन्तु बात ऐसी नहीं थी। अनिलदेव घबड़ाहट में बोले, "चलिये मैं चलता हूँ।" और अंदर बढ़ गये। उनके पीछे होकर अभिरामा ने भीतर प्रवेश किया। बैठक में प्रवेश करते ही अनिलदेव वहाँ कुर्सी पर बैठने के लिये उद्यत जान पड़े। बीच में उनके भाव को समझ कर अभिरामा बोली, "चलिये आँगन में। रात बड़ी सुहानी है। मैंने वहीं दो कुर्सियाँ निकाल रखी हैं।"

"चलिये।"

अभिरामा के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए अनिलदेव आँगन में आये। सामने की कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए अभिरामा ने कहा, "आज दिन को मैंने बलपूर्वक वह पत्र पढ़ने का भार आपके ऊपर लाद दिया था। मेरा ख्याल है, आपने उसे अवश्य पढ़ लिया होगा।"

"हाँ, पढ़ तो लिया है ।" बोले अनिलदेव । इसके बाद अभिरामा स्वयं हँस पड़ी । अनिलदेव ने पूछा, "क्यों, आपने हँस क्यों दिया ?"

"योंही । मेरे पत्र लिखने का टेकनिक आपको पसन्द आया होगा ।" इस प्रकार बोल कर अभिरामा एक कुर्सी पर बैठ गई । अब तक अनिलदेव भी बैठ चुके थे । बहुत ही धीर गति से आकाश-दीप जल रहे थे । मेघ का एक टुकड़ा भी आकाश और पृथ्वी के बीच नहीं था । बड़े-से मकान में चारों ओर पूर्ण सन्नाटा छाया हुआ था । अभिरामा देखने में ऐसी लग रही थी जैसे उसने आज अन्तर की संचित श्रद्धा को बटोर कर श्रृंगार किया हो । बदन पर एक पतली बनारसी साड़ी थी । रेशमी जैकेट । गोल ललाट पर भृकुटियों के मध्य में कज्जल जड़ी बिन्दी बड़ी भली मालूम देती थी । जब वह तिरछा होकर अनिलदेव से कुछ कहने लगती तो शीतल चन्द्रमा की स्वर्ण-किरणों की आभा से वह चमक उठती थी । चाँदनी के भीने प्रकाश में ही ऐसा प्रतीत होता था कि आज उसने हेजलीन आदि भी व्यवहार किया है । वह खुश तो दीखती थी ; किंतु भावुक, विचारवान और कभी उन्मत्त की भाँति भी । अनिलदेव से कहा गया था पत्र लिखने का टेकनिक उन्हें पसन्द आया होगा । उन्होंने अपनी सम्मति यह दी, "मैं साहित्य का विद्यार्थी तो नहीं, लेकिन यह बात अवश्य कहूँगा कि आप केवल एक साधारण चित्रकर्त्री ही नहीं, बल्कि उदीयमान कवियित्री भी हैं ।" पत्र आपने क्या लिखा है, खासी कविता कर दी है । वह भाषा, वे भाव, पत्र के नहीं, कविता के है ।" और बोल कर चुप रह गये । इस पर अभिरामा दो क्षण एक दम जड़ बनी रही । अनिलदेव ने समझा, शायद उन्हें बुरा लगा । इसलिये वे बोले, "सच कहता हूँ आप बुरा न मानिये । मैं आपको बना नहीं रहा हूँ ।"

अनिलदेव के उपरोक्त बात कहने पर अभिरामा ने जल्दी-जल्दी दो तीन दीर्घ-निश्वास छोड़ कर कहा, "सो ठीक है । मगर आप ईमानदार आलोचक नहीं जान पड़ते । क्योंकि आपने यह मार्क नहीं किया कि एक

बेटी अपने पिता के पास ऐसी भाषा में पत्र नहीं लिख सकती। क्यों कहिये, मेरा ख्याल तो दुरुस्त है न ?"

"ख्याल में आपके क्या शिकायत है। मगर आलोचक की हैसियत से पत्र मैंने पढ़ा कहाँ ? और मैं समझता हूँ केवल स्वाभाविकता का रट लगाना एक प्रकार का दृष्टि-दोष है। प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिता-शक्ति एक ही मनोदर्शन की कसौटी पर नही आँकी जा सकती। संसार में अगर दस प्राणी हैं तो उनका दस ही व्यक्तित्व होगा, नौ कभी नहीं।"

अनिलदेव ने अपने विचार की पुष्टि इस प्रकार की। तब अभिरामा ने कहा, "नहीं, यह तो तर्क मात्र है। ऐसा पत्र पुत्री पिता के पास नही भेज सकती। हाँ, आपको उस पत्र में मेरी कवित्व-शक्ति दृष्टिगोचर हुई, इसके लिये मैं कम खुश नहीं हूँ।" और फिर गंभीर हो गई। इस पर भी न-जाने क्यों अनिलदेव डर रहे थे। बोले, "मैं व्यंग नहीं करता। कम-से-कम मुझे जैसा लगा मैंने कह दिया है।" अभिरामा ने अनिलदेव का मुख गौर से देख कर कहा, "आपने ठीक ही तो कहा। कविता क्यों न करूँ। कविता ही जीवन है मेरे लिये। आपको भी क्या मेरी भाषा पसन्द आ गई। धत् तेरी. . . .अच्छा, आप ही अपने दिमाग से बोलिये कि क्या ऐसा पत्र मुझे पिता जी के पास लिखना चाहिये था। मैंने केवल वही पत्र नहीं जिसे आपको दिया था और भी बहुत-से पत्र लिखे थे। सब में थोड़ा-थोड़ा का अंतर था। मगर वह पत्र मेरा फाइनल था। बहुत पागल हूँ मैं क्यों ? घर में बैठी-बैठी दिन-रात यही सब तो किया करती हूँ। आपको भी दिल्लगी सूझती है अनिल जी ! कविता करना मैं क्या जानूं। मस्तिष्क को स्थिरता मिलने के बाद ही कविता सूझती है। और वह भी हमारे आप जैसे व्यक्ति को नहीं। केवल उन्हें जो काव्य के रसिक है। हम लोग तो पूरे कमर्शियल लाइफ बिताने वाले हैं। बोलिये, क्या मैं गलत कह रही हूँ ?"

अभिरामा के इस लम्बे तर्क का प्रतिरोध अनिलदेव किसी भी प्रकार करना नहीं चाहते थे। वे समझते थे, वाद-विवाद से अभिरामा और

भड़केगी, वह शांत होने को नहीं। अतएव वे चुप ही रहे। अभिरामा ने दीर्घ स्वर में पूछा, "बोलिये न। आप तो कभी-कभी चुप्पी साध लेते हैं। कविता क्या ऐसी वस्तु है जो मनुष्य को हमेशा सूझ सके ?"

"नहीं, यह हमेशा सूझने की चीज नही है।"

"देखिये, मैं आपको कहे देती हूँ। अब आप मुझसे कविता की चर्चा न करेंगे। हाँ, एक बात है कि जब भीतर की भावना उमड़ती है तो बाहर का ध्यान नहीं रह जाता और उसी भीतर और बाहर की असमानता में मनुष्य अपने को लय कर देना चाहता है। आपका भी कहना कोई बेजा नहीं, सचमुच पत्र की भाषा कविता अथवा निबन्ध की थी। देख रहे हैं न मकान मेरा, कितना सूनसान है। क्या सूझेगा यहाँ केवल अनाप-सनाप के ?" बोली अभिरामा। अनिलदेव ने कहा, "मैं समझता हूँ, इस समय आपका मन यहाँ कम लगता होगा।"

"मन की बात कहना तनिक कठिन है, अनिल जी! मगर मैं आपसे एक बात पूछना चाहती थी। आप तो उनके मित्र हैं न, बोलिये ?" पूछ कर अभिरामा ने जिज्ञासा प्रकट की। "बोलिये भी तो।" अनिलदेव ने कहा। अभिरामा बोली," मान लीजिये आज मै स्वस्थ हूँ। कल मेरा शरीर बीमार पड़ जाये, मैं इस मकान में अकेली रहते डरूँ, अथवा अनुमान कर लीजिये इसके अलावा कोई और भी कारण ऐसा आ जाये कि मै इस मकान में न रह सकू तो क्या आप मुझे अपने मकान में शरण देंगे ?"

"अवश्य! आपको पूछने की आवश्यकता न होगी। इस समय भी आपका मन नहीं लगता तो चल कर मेरे यहाँ मन बहला सकती हे जब तक मेरे घर में वे रहती हैं।" अनिलदेव ने उत्तर दिया।

"कब तक रहती हैं, वे ?"

"साढ़े दस बजे तक तो अवश्य जानिये।"

"आप इस सम्बन्ध में पहले उनसे पूछ लीजियेगा तब कहियेगा। और मुश्किल तो यह है कि उनसे मेरा नया-नया परिचय होगा अरे राम, मैं

कैसे मिलूँगी। अच्छा हो गया, अब आप जाइयेगा न।" कहते-कहते अभिरामा उठ गई। अनिलदेव भी उठ कर द्वार् तक उसके साथ आये और सप्रेम विदा होकर लौट पड़े।

———o———

(६)

मीनाक्षी डाक्टर हेमचन्द्र की एक मात्र कन्या है। सोलह शिशिर-वसन्त देखने के बाद उसने अभी सत्रहवें वर्ष की ओर पग बढ़ाया है। बी० ए० में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी छोड़ देनी पड़ी क्योंकि इधर वह अधिक अस्वस्थ रहने लगी। दो-तीन माह ही तो हुए काशी से यहाँ आ गई है। मकान तो यू० पी० के शहर में है, किंतु बंगला भी बहुत शुद्ध बोलती है। कहते हैं, मराठी और उड़िया की पुस्तकें भी हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी की तरह पढ़ती है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास पढ़ने का बेहद शौक है। वह गीत गाती है, वायलिन बजाती है, शास्त्रीय नृत्य जानती है किंतु चंचलता तनिक भी नही है। वैसे देख कर कोई नहीं बतला सकता कि कालेज की पढ़ी-लिखी है। अनिलदेव डाक्टर हेमचन्द्र के कियायेदार हैं। नीचे वे स्वयं रहते हैं, ऊपर का पूरा फ्लैट अनिलदेव को दे दिया है।डाक्टर साहब का कहना है कि उनके जैसा अच्छा कियायादार इस मकान में अभी तक नहीं आया था। किसी से समय पर मकान का किराया न मिलने की शिकायत, किसी से मकान गन्दा रखने और किसी से मैत्रीभाव न रहने की शिकायत थी। इस प्रकार ऊपर के फ्लैट में जब से ये लोग आ गये हैं, फ्लैट का नक्शा ही बदल गया है। चारों ओर सफाई-ही-सफाई रहने लगी है। अभी अनिलदेव के आने के पहले जो परिवार इस फ्लैट में था,उससे डाक्टर साहब को नाकों दम हो गया था। बाथरूम एक ही है नीचे। सभी इसी में बारी-बारी से स्नान करते हैं। उस परिवार की यह हालत थी कि मालकिन दिन-रात गंदे कपड़े साफ किया करती थीं। मकान लेते समय तो कहा, केवल तीन प्राणी रहेंगे। पति-पत्नी और एक नौकर अथवा महरी। मगर मकान

में आने के तीसरे दिन भूले-बिसरे नाते-रिश्ते के लोग आने लगे । और खुद देवी जी को चार पुत्रियाँ और तीन पुत्र थे । जिनमें दो बच्चे तो बीमार ही रहते थे । किसी को मलेरिया, किसी को सर्दी-खाँसी और किसी को मर्माहत घाव सताता रहता था । एक बार जब उन्हें मकान छोड़ने के लिये कहा गया तो तमक कर बोले, "सरकार का नया कानून मालूम नहीं है क्या ! कोई भी मकान मालिक पुराने कियायेदार को निकाल कर नया किरायादार नहीं रख सकता और न किराया ही बढ़ा सकता है । आप यदि यही चाहते हैं तो कोर्ट के जरिये फैसला कराइये ।" इस पर बड़ा मुश्किल हुआ । डाक्टर साहब सुन कर सन्न रह गये । अंत में उन्हें एक उपाय सूझ पड़ा । वह यह कि मीनाक्षी का विवाह करने का बहाना किया जाये । विवाह में यदि मकान खाली न हुआ तो फिर साधारण दिक्कत न होगी । ऐसा ही हुआ और डाक्टर साहब ने अड़ोस-पड़ोस के लोगों से कहलवाया । इस बीच काशी से मीनाक्षी भी बुला ली गई । कियायेदार महोदय को यह आश्वासन दिया गया कि विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद उन्हें फिर यहाँ बुला लिया जायेगा । वे केवल एक माह के लिये कहीं अन्यत्र प्रवन्ध कर लें । इस पर वे राजी हो गये और जिस दिन उन्होंने अपना पैर निकाला कि उसके दूसरे दिन अनिलदेव वनजा के साथ यहाँ आ गये ।

हाँ, तो डाक्टर हेमचन्द्र की अब गिरती अवस्था है । पचास से ऊपर के हो चुके हैं । वे जो कुछ भी कमाते हैं, जो कुछ भी करते हैं सब मीनाक्षी के लिये । न पुत्र है और न पत्नी । मीनाक्षी के भूमि पर आते ही उसकी माता स्वर्ग सिधार गई । डाक्टर साहब होमियोपैथ एलाज में रामवाण कहे जाते हैं । खुद उन्हें भी विश्वास है, अपने अनुभव और अध्ययन पर । जो वे सुबह आठ बजे डिस्पेन्सरी में बै कर प्रिसक्रीप्सन लिखना शुरु करते हैं सो एक बजे उठते हैं । कम्पाउन्डर की टेबुल पर चवन्नी का ढेर लग जाता है ।

वनजा से मीनाक्षी की गहरी मित्रता हो गई है । गत, रविवार को उसने वनजा को 'दीदी' कह कर पुकारा और यह भी बतलाया कि वह

अनिलदेव को 'जीजा' कहा करेगी। वनजा ने हँस कर एक स्वीकारात्मक उत्तर दे दिया। मीनाक्षी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं इसलिये डाक्टर साहब उसे पास पड़ोस में नहीं जाने देते। घर में रेडियो है, गीत सुन सकती है। स्वयं साथ में अपनी पसन्द की बहुत सी पुस्तकें ले आयी है पढ़ सकती है। अधिक मन न लगे तो वह वनजा के पास बैठ सकती है। वनजा यदि कहीं टहलने निकले तो वह भी साथ में जा सकती है, इसके लिये उन्हें एतराज न होगा। अस्तु !

आज दफ्तर जाने के पहले अनिलदेव ने वनजा से अभिरामा की चर्चा की थी। उन्होंने कहा, "वे तुमसे पूछने के लिये कहती है, न जानें क्यों। बड़ा-सा मकान है। अकेली रही नही है। मैंने कहा, "यदि तबीयत ऊब जाये तो मेरे यहाँ आकर मन बहला आया कीजिये। क्या विचार है, तुम्हारा, क्या कहूँगा ?"

इस पर वनजा ने कहा, "मेरा विचार कोई दूसरा नही है। वे आवें न।"

"आज दफ्तर से लौटते समय उन्हें लेता आऊँगा।"

"अच्छा।" बोली वनजा।

और अब अनिलदेव दफ्तर चले गये। आज उन्होंने मोटर साइकिल नहीं ली थी। कारण वे दृढ़ थे कि लौटते समय अभिरामा को साथ ले आना है। वे भाड़े पर बग्घी लेकर दफ्तर चले आये। आज दफ्तर में कार्याधिक्य न रहने के कारण उन्हें शान्ति से बैठने का अवसर मिल गया, और वे अभिरामा के विषय में सोंचने लगे। उसने कैसा पत्र अपने पिता के नाम लिखा था ? एकरसता से जीवन वनजर बन जाता है। चंदन यदि शीतलता-हीन हो तो उसकी महत्ता ही क्या होगी। परागहीन पुष्प और सुहागरहित नारी में कोई अंतर नहीं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दूर तक विस्तृत नभ-लोक में असंख्य तारिकाओं के रहते हुए भी एक धवल चंद्र के बिना क्या सम्पूर्ण आकाश मंडल विक्षिप्त नहीं दीख पड़ता ? प्रकृति पुरुष का सामंजस्य चाहती है। उसने यह कौन सा अन्याय किया है कि उनकी अनुपस्थिति में वह अपने मानसिक कलेवर को स्वस्थ्य नहीं रख पाती ?

वह उतावली नहीं हो गई है, यह मानना होगा। पिताजी जब किसी कारण बश समय पर घर नहीं लौटते थे तो माता जी बेचैन हो जाया करती थीं यह भी क्या सत्य है। उसकी कला की प्रतिष्ठा करने वाला कोई कहाँहै भारतवर्ष में। यहाँ कलाकार वही है जिसने झू बोलना सीखा है, जिसने मन्त्रियों को निमन्त्रण देकर अपनी कला-प्रदर्शनी का उद्घाटन कराया है, जिसने पब्लिसिटी के निमित्त सब कुछ करना चाहा है। जो केवल ठोस कला के हिमायती नही उसके बाद और कुछ भी है। इन्सान की बिक्री इन्सान के हाथ होनी चाहिये। उनके हाथ नही जो इन्सानियत के नाम पर इन्सानियत का गला घोंटते हैं। वे भाग न जायें तो क्या करें ? कलाकार ने सर्वप्रथम जीवन की चिता सँजोये और तब कला के मन्दिर में प्रवेश किया। उसने समझा चिता की राख ही उसका अवशिष्ट भाग अथवा स्मृति-स्तम्भ होगी। वह सीढ़ी पर चढ़ता गया, कला की निराकार प्रतिमा उसे मधुर संकेत दे-दे कर अपनी ओर बुलाती रही। वह बढ़ता गया, बढ़ता गया, निरन्तर अवाधगति से नही—बहुत मुश्किल से। वह समझता था, कला अतीव सुन्दरी है—कल्पना से परे। वास्तविक संसार में रहने के लायक नही है। वह उसे प्राप्त करेगा तो यहाँ नही रहने देगा। यहाँ के लोग बड़े वैसे हे। इनकी मनोवृत्ति बहुत ही संकीर्ण है। उसके सुराहीदार गले में रत्नजटित मनोहर हार था। उस पर से वह नक्षत्रों की मालिका पहने थी। ओह, इतनी चमक ! नेत्र मिलाना दुश्वार था ! उसकी डमरुमध्य-सी कटि पर रत्नमेखला झूल रही थी। वह उसकी ओर बढ़ता चला जा रहा था। एक बार हाथ से संकेत से वह उसे बुलाती ; कलाकार की मृग-तृष्णा बढ़ती चली जा रही थी। सफलता की एक बून्द दोपहर का ओस-कण बन कर शून्य में विलीन होती जाती। पर, वह बढ़ता जाता। एक बार ऐसा लगा, जैसे कला ने अपना हाथ कलाकार के हाथ में रख दिया। ओह, वह तो निहाल हो गया ! मगर दूसरे ही क्षण कहाँ थी वह ? मन्दिर सूना था। सीढ़ी डगमगा रही थी। कदम काँप रहे थे। चारों ओर नीरवता थी, महा-अंधकार था।

पूरे आठ पृष्ठों का वह पत्र उन्हें याद नहीं, बहुत विस्तार में था वह पत्र। यहाँ पर एक बात बतला दूं। उस दिन की भेंट के बाद अनिलदेव तीन दिन अभिरामा से मिल नहीं सके थे। दफ्तर का काम अधिक था। नौ बजे रात तक वहीं रुक जाना पड़ता था। इतना गंभीर चिन्तन एवं मनन के बाद भी किसी में दुर्बलता आ सकती है इस पर अनिलदेव को आश्चर्य हो रहा था। इसी समय एक मित्र का टेलिफोन आ गया। उन्होंने अनिलदेव को किसी चाय-पार्टी में शामिल होने के लिये जल्द बुलाया था। एक घंटा समय शेष था। अपने असिस्टेन्ट को बुला कर अनिलदेव ने कुछ खास बातें उन्हें समझा दी और आप एक घंटा पूर्व ही चल पड़े। बीच में अभिरामा को लेकर घर भी तो पहुँचाना था।

वे सीधे पहुँचे अभिरामा के यहाँ। द्वार खुलवाया तो पता चला वह सो रही थी। उसने अनिलदेव को यथास्थान बैठा कर पूछा, "इस वक्त आपने कैसे कष्ट किया ?" उत्तर में जो सही बात थी, अनिलदेव ने बतला दिया। अभिरामा ने पूछा, "तो मैं अभी ही चलूं ?"

"कोई आपत्ति न हो तो अवश्य चलिये।"

"तो आप यही ठहरिये। मैं कपड़े बदल लूं।" कह कर अभिरामा अनिलदेव को वही छोड़ कर दूसरे कमरे में कपड़ा बदलने आयी।.कुछ बनारसी, कुछ भागलपुरी साड़ियाँ थीं—सीमित। वह किसे पहने, और किसे नही। अरे, यह साड़ी तो अच्छी नहीं है। विदाई के समय माँ ने दी थी। वह अनिलदेव के यहाँ जा रही है। अनिलदेव बहुत बड़े आदमी हैं। उनके यहाँ वाले कैसे-कैसे आकर्षक वस्त्र पहनते होंगे। कभी-कभी उसे ऐसा लगता जैसे अनिलदेव की पत्नी सामने आकर पूछ रही है, यह साड़ी आपने कहाँ और कितने में खरीदी, इसका आँचल तो उतना अच्छा नहीं है।" कभी लगता, उनकी कोई सहेली कह रही है, मुन्ना जब पैदा हुआ था तो खुशी में महरी ने अच्छी साड़ी की मांग की तो मैंने ऐसी ही साड़ी दे दी थी। वह मुन्ना को बहुत मानती है।" इस प्रकार एक-एक कर अभिरामा अपनी

सभी साड़ियाँ देख गई। उसे तुष्टि न मिली। वह कई बार लौट कर अनिलदेव से यह कहने आयी कि वह नहीं जायेगी। मगर वह उनके सामने भी न हो सकी और फिर उसी कमरे में लौट आयी। और अंत में फिर यह हुआ कि उसने सबसे भद्दी साड़ी पहन ली। चप्पल पहन लिया और अनिलदेव के पास आती-आती एक बार लौट गयी, उसे लगा वे पूछ रहे हैं, और कुछ नहीं पहनना है ? अब क्या पहनेगी वह ? नही, अब कुछ नही पहनना है। कह दिया, अब कुछ नही पहनना है। और वह अनिलदेव के पास आकर बोली, "चलिये न, अब कुछ नही पहनना है।"

"बड़ी कृपा, चलिये।" बोले अनिलदेव और उठ खड़े हुए। चाभी का गुच्छा हाथ में लिये अभिरामा बाहर निकली। द्वार बंद कर दिया। सीढ़ी से नीचे उतर कर अनिलदेव फिटन ठीक करने लगे।

(७)

रात्रि हो आयी। मौन नीड़ों में पंछीगण विश्राम करने लगे। घड़ी ने टन्-टन् कर दस बजने की सूचना दी और सीढ़ी के द्वार पर खड़े अनिलदेव ने वनजा को पुकारा। वह नीद से सोयी नहीं थी, दौड़ी हुयी आयी। देखा, अनिलदेव अकेले हैं। कह कर कुछ ऐसे गये थे जैसे सन्ध्या में अभिरामा को साथ लेते आवेंगे। वनजा द्वार खोल कर चौखट पर एक क्षण आश्चर्य चकित-सी खड़ी रही। अनिलदेव ने उसकी यह दशा देख कर अंदर प्रवेश करने के लिये पैर उठाते हुए पूछा, "क्या देख रही हो ?"

"वे. . . . ।" उत्तर देते-देते रूकी वनजा।

"वे, वे क्या ?"

"वे नहीं आयीं।" बोली वनजा।

वनजा के कहने का आशय अनिलदेव समझ गये। उन्हें क्षोभ हुआ। कुछ ऐसा आभास हुआ जैसे वे विक्षिप्त होकर वहीं गिर पड़ेंगे। जैसे किसी ने उनके स्वाभिमान पर बड़ा धक्का पहुँचा दिया है। वे घर में चलते गये।

वनजा भी बढ़ती गई। अंदर जाकर वे पलंग पर पी के बल लेट रहे और बोले, "वे आ रही थीं, मगर आधे रास्ते से लौट गईं।"

"क्या कहा, आ रही थीं; किंतु आधे रास्ते से लौट गईं ?" क्यों, तुमसे कुछ तनातमी तो नहीं हो गई ?" पूछा तब वनजा ने अनिलदेव ने साधारण ढंग से कहा, "नहीं, मुझसे किस वास्ते तनातनी होगी। न-जाने, कैसा स्वभाव है ? मुझे तो एक नम्बर का झक्की मालूम होती हैं। बीच रास्ते में फिटन रुकवा कर कहने लगी, मुझे क्षमा कीजियेगा। आज मैं आपके यहाँ नहीं चल सकूंगी। मुझे मेरे घर तक आप पहुँचा दीजिये। बहुत अहसानमंद हूँगी।"

"तुमने आग्रह नहीं किया ?"

"आग्रह करने नहीं देती हैं भाई। कहने लगी, मेरे साथ फार्मेलिटी कोई चीज नहीं। आपका घर मेरा घर है। फिर कभी, फिर कभी.... कहती हुई फिटन से उतरने लगीं। मैंने कहा, जब वापस ही चलना है तो उतरती क्यों हैं, इसी पर चले चलिये न। तो बोली, अरे हाँ, मैं तो यह भूल ही गई थी। खैर, यही समझ लो, किसी प्रकार उन्हें घर पहुँचाना पड़ा। वहाँ जाकर विचित्र प्रश्न किया उन्होंने मेरे साथ। मै तो दंग रह गया ... बोलते-बोलते रुके अनिलदेव।

"क्या प्रश्न किया उन्होंने ?" वनजा ने पूछा।

"उन्होंने पूछा, आप यह बतलाइये कि वे नहीं हैं, तो क्या मुझे आपके यहाँ जाना चाहिये ?"

अनिलदेव ने बतला कर कहा, "मैंने कहा, इसमें आपकी कोई तौहिनी तो नहीं है। आपको हमने अपना समझ कर चलने के लिये कहा है। अब आप जो समझें। वे बोलीं, नहीं इसमें तौहीन की कोई बात नहीं है; किंतु मेरा मतलब आत्म-तुष्टि से हैं। उनके साथ चलने की शोभा कैसी होती! विपदा से यदि कलाकार की पत्नी मुख मोड़ लेती है तो वह अपने पति और अपने बाद आने वाली कई पीढ़ियों के प्रति अन्याय करती है। भूल की

छाया से वर्त्तमान वंचित नहीं रह पाता और वर्त्तमान का असर भविष्य पर अवश्य पड़ेगा। आप इस वक्त जाइये। मैंने आपके यहाँ न जाने के लिये कोई शपथ नहीं ग्रहण किया है। जाने के मूडमें जब तक मेरी आत्मा घुल मिल न जायेगी तब तक के लिये तो असमर्थ ही जानिये।" बाद में क्या करता। मुझे एक चाय-पार्टी में शामिल होना था। मैं वहीं चला गया और वही इतनी देर भी हो गई।"

इसके उपरान्त उन लोगों ने भोजन किया और विश्राम करने लगे। सुबह होने पर दैनिक कार्यक्रम की भाति जब दफ्तर का समय हुआ तो अनिलदेव भोजनोपरान्त कपड़े बदल कर दफ्तर चले गये। आज उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि इधर कम-से-कम तीन-चार रोज वे अभिरामा के पास नही जायेंगे। दिन भर दफ्तर की फाइलें पढ़ने के बाद उन्हें चार बजे कुछ अवकाश मिला और उस अवकाश में यह सोचने के साथ-साथ कि इधर कुछ दिन वे अभिरामा के यहाँ नही जावेंगे यह भी याद करने लगे कि पिता के नाम लिखा गया वह भावपूर्ण पत्र कितना मर्मस्पर्शी था। कला की चिरन्तन साधना करता हुआ कलाकार संगमरमर की सुन्दर चिकनी सीढ़ियों को पार करता जा रहा था। वहाँ से कला बहुत ही सुन्दर दीख पड़ती थी। वह आगे बढ़ता सोच रहा था, यदि वह मिल गई तो उसे किसी के पास नहीं छोड़ेंगे। वह अपनी जिन्दगी में किसी को हिस्सा दे सकता है, मगर उसमें नहीं। जिन्दगी मिलने पर कला सभी को कहाँ मिलती है? एक बार उसकी पलकें झुकी, अनुभव हुआ कि कला पास आकर खड़ी हो गई और उसके सिर पर अपना दाहिना हाथ रख रही है कि वह आनन्दातिरेक से शिथिल हो उठा, दूसरे क्षण वह वही धराशायी हो रहा। पत्थर से घुटने पर चोट लगी। रक्त की अविरल धारा प्रवाहित हो चली, वह फिर उठा। आह भी उसके मुख से न निकली। कला उसकी योग्यता का, विद्वता का, त्याग, तप, आराधना का कर रही है मौन अर्चन। आज उसके धैर्य्य, संयम और प्रतिभा की दृढ़ परीक्षा हो रही है। रक्त चू रहा था। वह आगे बढ़ा, तो नेपथ्य से कला का स्वर सुनायी पड़ा, "रुक जा, रुक जा रे पागल!

मुझे तुम्हारा यह कष्ट देखा नहीं जाता। मेरी अनुभूति अनन्त है, मैं डर रही हूँ तुम्हारे पास आने से। कला अपना पारखी खोजती है। भगवान् जानें, तू कैसा निकलेगा! कला का समर्थक दाने-दाने को मुहताज होता है। तुमसे शायद यह सब कष्ट सहन न हो सकेगा। जा, जा, तू लौट जा। मालूम हुआ, एक वन-प्रदेश से होकर कलाकार गुजर रहा है। तराई में मार्ग और नीचे से मुक्त सुन्दर झरना है। ऊपर पहाड़ी के छोर पर कला खड़ी उसे जाने के लिये वाध्य कर रही है। पच्छिम के मलय पवन के झोंके से उसका आँचल ऊपर की ओर उठ कर लहरा रहा है। कलाकार का मस्तिष्क दर्द से फटने लगा। उसने कला की ओर सिर उठा कर ज्योंही यह पूछना चाहा कि क्या वह अन्तःकरण से कह रही है कि कलाकार लौट जाये त्योंही आभास हुआ, वह विह्वल हो उठी। कला ने हाथ उठाया, पावस के नन्हें-मुन्ने टुकड़े नभ-मंडल में धहरा उठे कला के होंठ काँप गये और मुश्किल से वह कह पायी, रुक जा, रुक जा रे. . . . जैसे वह वहीं पहाड़ी पर से नीचे की ओर वन-प्रदेश में गिर पड़ी। क्षितिज के किसी कोने से वेदनापूर्ण स्वर गूज उठा—ओह. . . . । और घंटों पवन से टकराता रहा-टकराता रहा। अब स्वयं कला का मस्तिष्क चक्कर खा रहा था।

सोचते-सोचते अनिलदेव ने अपना सर थाम लिया। वे क्या करने जा रहे हैं, वे कुछ सोच न सके। उनका विचार संयत है अथवा असंयत वे समझ न सके। उन्होंने असिस्टेन्ट को बुला कर कहा, "मैं अभी चल रहा हूँ। अब कल आऊँगा।"

"बहुत अच्छा। जाइये।" कह कर असिस्टेन्ट चला गया। अनिलदेव दफ्तर से बाहर निकल आये और अब वे मोटर साइकिल पर सवार होकर यशोविजय के मकान की ओर चले। मनुष्य के रूप में मनुष्य का ढाँचा उन्होंने खूब देखा है, मगर भावों में इतनी सुकुमारता, बल्कि ऐंसा व्यक्तित्व बहुत कम, सौ में एक नहीं, हजार में एक मुश्किल से। धूल उड़ रही थी। मोटर साइकिल जन-पथ की छाती पर बढ़ती जा रही थी—निरन्तर।

कुछ देर बाद जब अनिलदेव अभिरामा के यहाँ पहुँचे तो देखा, वह एक साधारण साड़ी, तथा जैकेट पहने है। भाव-मुद्रा से ऐसा ज्ञात हुआ जैसे कहीं जाने की तैयारी में है। देखते ही सादर अभिवादन के पश्चात् उसने हँस कर कहा, "आप बड़े अन्तर्यामी हैं।"

"क्यों, आपने यह कैसे निर्णय किया ?" अनिलदेव ने सम्हल कर पूछा। वह बोली, "सच कहती हूँ, आप भगवान ही है। अनिलदेव ने आश्चर्यान्वित होकर कहा, "क्यों, ऐसी क्या बात हो गई ?"

"अच्छा, पहले आप यह बतलाइये कि आपने यह कैसे जान लिया कि आज मैं आपके यहाँ अवश्य ही जाऊँगी और आप मुझे लिवाने चले आये ?"

"नहीं, परमेश्वर की शपथ देकर पूछ लीजिये। मैंने ऐसा कुछ नहीं जाना। यो ही आपसे मिलने आया था, आ गया हूँ। मेरे यहाँ आप आज चल सकती हैं, मैं तो इसकी कल्पना भी नही करता। क्योंकि कल की बात मैं भूल नही गया हूँ।" बोले अनिलदेव। अब तक अभिरामा ने उन्हें कुर्सी पर बिठला दिया था। अनिलदेव के यह कहने पर अभिरामा ने उनकी मुखाकृति को देखा और बोली, "क्यों, आप मेरे कल के व्यवहार से क्षुब्ध है क्या ? सब समय है अनिल जी। नही कहा जा सकता सभी स्थल पर गहरा मनोविज्ञान ही काम करता है।"

"नहीं, मैं क्षुब्ध हूँ ऐसी बात नहीं। मेरा मतलब यह है कि कल आप आधे रास्ते से लौट आयी थीं, हो सकता है कि कुछ दिन तक वही मूड बना रहे। मैं क्षुब्ध हूँ, आप ऐसा न सोच लेंगी।"

"मेरे पास से जाकर तो आपने घर पर सारी बात कह दी होगी ?"

"हाँ, अगर सच पूछिये तो उनके पूछने पर मैंने सारी बातें कह दीं जो आपके बीच हो चुकी थीं।" अनिलदेव ने स्पष्ट किया। इस पर अभिरामा उनके और समीप आकर बोली, "तब तो आपकी देवी जी मेरे व्यवहार से काफी असन्तुष्ट हुई होंगी। खैर, अपना-अपना भाग्य है।"

"यह में नहीं कह सकता। मगर अपनी असन्तुष्टि का उन्होंने कोई भी भाव मेरे सामने प्रदर्शित नहीं किया।"

"आप भी बड़े भोले हैं। जीवन का प्रत्येक भाव, प्रत्येक उद्गार प्रदर्शित करने के लिये नहीं होता।" कह कर अभिरामा मुस्कुरा पड़ी। अनिलदेव खामोश रहे। आगे अपनी हँसी रोक कर वे फिर बोली, "क्या कहूँ रात से इस मकान में मुझे भय सता रहा है। सोये में जग जाती हूँ। लगता है, मेरे सिरहाने कोई खड़ा है। ठंढ़क में भी पसीना से नहा जाती हूँ।"

"अरे, ऐसा क्यों होता है?" अनिलदेव आत्म–विस्मृत हो उठे। उन्हें आश्चर्य हुआ। रात ही से वे डरने क्यों लगी है। वे पूछने लगे, "क्यों मकान में अकेली रहती हैं, इसीलिये तो नहीं, या आस-पास में कहीं भूत-प्रेत का बसेरा है। और चोर भी तो आ सकते हैं। आपको किस पर शक है?"

"शक नब्बे प्रतिशत असत्य होता है; अनिलदेव जी! मगर मैंने आप से सच्ची बात बतला दी, मुझे रात भय के मारे नींद न आई, दम घुटा जा रहा था।"

"घबड़ाइये नहीं। कभी-कभी ऐसा होता है।" बोले अनिलदेव। अभिरामा ने एकाएक प्रसंग बदल कर कहा, "मैं समझती हूँ कि अब पाँच बजने को है। चलिये, फिर आपके यहाँ से शीघ्र ही लौट आऊँगी।"

"क्यों, कपड़े नहीं बदलेंगी?" अनिलदेव पूछ बैठे। इस पर कुछ क्षण अभिरामा चुप रह कर बोली, "चलिये कपड़े में क्या रखा है। सोने की चमक से चेहरे की दमक बढ़ती है, व्यक्तित्व की नहीं।"

इसके बाद अनिलदेव उठे। अभिरामा ने उत्तेजना के भाव में कहा, "आप देर क्यों करते हैं, जाकर गाड़ी ले आइये।"

गाड़ी से उतर कर अभिरामा को साथ लिये अनिलदेव जब मकान के अन्दर गये तो देखा, कोठे पर जाने वाला दरवाजा बन्द है। अभिरामा

की ओर देख कर बोले, "अरे, यह तो ताला लगा है।" अभिरामा ने कुछ न कहा। तब तक अपने कमरे से मीनाक्षी दौड़ती हुई आयी और बोली, "क्या है जीजा, दरवाजा बन्द है न ?"

"हाँ, कहाँ गईं है ; कुछ मालूम है तुम्हें ?" अनिलदेव ने पूछा।

"वे कहीं भी गई हों, आपको घर में जाने के लिये उपाय कर दूगी।"

"दिल्लगी करती हो मीनाक्षी, बतलाओ वे कहाँ हैं ?"

"दिल्लगी की कोई बात नही। वे मुझे चाभी दे गई है।" कह कर मीनाक्षी चाभी लेने चली तो रोक कर उन्होंने पूछा, "और बतला नहीं गई कि वे कहाँ जा रहीं हैं ?"

"हाँ, वे अपने प्रोफेसर के यहाँ गई है।" बोली मीनाक्षी और चाभी लेने कमरे की ओर बढ़ गई। अनिलदेव मन-ही-मन परेशान हो रहे थे। मित्र की पत्नी आयी है। घर में कोई उठाने-बैठाने वाला नही। कोई स्वागत करने वाला नही। रास्ते में उन्होने सोचा था, नीचे वाले मकान के आँगन में जाते ही जहाँ तुलसी-वृक्ष है वनजा ऊपर से दौड़ती हुई चली आयेगी, और अभिरामा का हाथ पकड़ कर उसे घर में ले चलेगी। अभिरामा का मन खुशी से आत्मविभोर हो उठेगा। दोनो एक ही साथ बैठ कर कुछ देर वार्त्तालाप करेंगी। मगर ये सारी बातें कहाँ हुई ? यहाँ तक कि ऊपर का फ्लैट ही बन्द है। वनजा चाहे जितनी भी सुशीला है, कर्त्तव्यपरायणा है, मगर यह उन्हें कुछ अच्छा न लगा। आखिर अभिरामा क्या सोचेगी। अपने पति की ओर से पत्नी क्यों इस तरह असावधान रहती है। दूसरे दिन की बात जुदा थी, लेकिन आज ऐसा नहीं चाहिये था। जितनी देर मीनाक्षी को चाभी ले आने में लगी, इतनी देर में वे इतनी बातें सोंच गये। अभिरामा चुपचाप खड़ी थी। तभी मीनाक्षी चाभी लेकर सामने आ प्रस्तुत हुई। उसके हाथ से चाभियों का गुच्छा लेते हुए अनिलदेव ने पूछा, "आने के लिये भी कह गईं, कि कब लौटेंगी ?"

मीनाक्षी अनिलदेव के प्रश्न का उत्तर देना ही चाहती थी कि बाहर से किसी के आने की पद-चाप सुनायी पड़ी। तीनों आदमी उसी ओर एकबार

देखने लगे। कुछ देर बाद बाहर से वनजा आती हुई दीख पड़ी। उसके हाथ में अंग्रेजी की कुछ पुस्तकें और कापी थीं।

"कब आये ?" अभिरामा को देख कर वनजा ने अनिलदेव से पूछा।

"अभी चला ही आ रहा हूँ।" बोले अनिलदेव। उनका स्वर गंभीर था। वनजा उनके हाथ से चाभी लेकर दरवाजे की ओर बढ़ती हुई बोली, "आओ, सभी। चलो ऊपर।"

वनजा ने दरवाजा खोला। उसके पीछे अनिलदेव सीढ़ी पर चढ़े, तब मीनाक्षी और अभिरामा सब के पीछे हो ली। ऊपर पहुँच कर स्वयं अनिलदेव ने अभिरामा को यथोचित स्थान पर बैठाया, मीनाक्षी ढीठ हो गई थी, वह उचक कर पलंग पर जा बैठी। इस बीच वनजा पुस्तकों को अलमारी में रखने लग गई थी। पुस्तकों को अलमारी में रख कर वह अभिरामा के पास आयी और तब अनिलदेव ने उससे अभिरामा का परिचय कराया। उत्तर में वनजा ने यह प्रकट किया कि अभिरामा से मिल कर उसे असाधारण हर्ष प्राप्त हुआ है। मीनाक्षी ने कहा, "दीदी मैं चाय बनाऊँ। जीजा तो पियेंगे ही, साथ-साथ मेरा भी इवनिंग टी का झंझट तुम लोगों के साथ तय हो जायेगा।"

"जाओ बनाओ। मगर हाथ जले तो मेरा दोष न देना।" बोली वनजा और पलंग से उतर कर मीनाक्षी चाय तैयार करने चली। अनिलदेव को एक प्रकार से अवकाश मिला। वे दूसरे कमरे में कपड़े बदलने चले गये। वनजा और अभिरामा के बीच पारिवारिक बातें चलते-चलते यशोविजय के अचानक विलुप्त होने की चर्चा छिड़ गई। वनजा ने पूछा, "जाने के पहले उनके किसी मनोमालिन्य का आपको आभास न मिला था ?"

"बिल्कुल नहीं। व्यवहार से वे तनिक भी बदले न थे।" अभिरामा बोली।

"मैंने तो उन्हें कई बार देखा था। इनसे मिलने कई बार आये थे।"

"हाँ, क्यों नहीं, आये होंगे।"

इसके बाद अदिलदेव भी यहाँ आ पहुँचे थे। वे एक कुर्सी पर बैठते हुए वनजा का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर बोले, "बड़ा-सा मकान है। अकेली रहती हैं। मन उदास रहता है। मैंने कहा है इन्हें, जब तक तुम यहाँ रहती हो, आकर बैठें, तुमलोगों के साथ मन बहलावें।"

"सो, हर्ज क्या है। मेरे नही रहने पर भी रह सकती हैं। मीनाक्षी तो दिन भर रहती है। उनसे बातें करेंगी। और फिर हो सका तो रविवार को मैं ही इनके पास चली जाया करूँगी।"

लीजिये, अभिरामा जी, मेजारिटी, मस्ट बी ग्रान्टटेड!" हँस कर बोले अनिलदेव। इस पर अभिरामा भी हँस पड़ी। वनजा ने कहा, "हाँ, आपको तो अवश्य आना होगा।"

बातें करते समय अभिरामा अपने वस्त्र को निहार रही थी। वनजा जब उसके मुख पर देखती तो अभिरामा को लगता जैसे वह उनका जैकेट देख रही है। तो क्या उसका जैकेट अच्छा नही है? कुर्सी पर बैठी वनजा ने एक बार नीचे भूमि पर दृष्टि डाली तो उसने ऐसा अनुभव किया कि वह उसकी साड़ी की किनारी देख रही है। क्या ऐसी किनारी आज के फैशन से बाहर है? डिजाइन भी भद्दा है क्या? वनजा ने कैसी साड़ी पहन रखी है। गोरा बदन है उसका, उस पर जार्जेट की पीली साड़ी। हाथ पैर कितने कोमल है, उँगलियाँ कितनी पतली-पतली। अभिरामा सम्हल-सम्हल कर बैठती और बातें करती जा रही थी। इसी बीच मीनाक्षी ट्रे में चाय का सारा सामान तैयार कर ले आयी और टेबुल पर रख दिया। वनजा ने अभिरामा को चाय बनाने के लिये कहा। अभिरामा ने तनिक भी आना-कानी न की और केटली से चाय प्याले में ढालना प्रारम्भ किया। अनिलदेव ने वनजा से अभिरामा को इंगित कर कहा, "इन्हें रात से अपने मकान में डर भी लग रहा है।"

"हाँ, अपने मकान में डर लग रहा है, आपको?" अभिरामा ने आश्चर्यपूर्ण स्वर वनजा से सुन कर कुछ कहा नहीं! तनिक लजा-सी गई। वनजा ने पूछा, "मकान काफी बड़ा है न?"

"हाँ, मकान तो इन्होंने देखा है।" अनिलदेव को संकेत कर अभिरामा बोली। अब वह चाय में दूध मिला रही थी। वनजा ने अपना प्रश्न दुहराया, "तो डर लगता है न आपको ?"

"डर लगता है तो क्या करूँ। उस अज्ञात भय से तो आज का मानव-समाज अधिक भयानक है। और डर किस जगह नहीं, जो कमजोर है उसे भी डर है, जो मजबूत है उन्हें भी डर है।" कुछ अधिक गंभीर हो अभिरामा बोली। उसकी मनःस्थिति ऐसी हो गई थी जैसे वह अभी भाषण दे डालेगी। तब तक चाय तैयार हो गई। वनजा ने टोस्ट के साथ चाय का प्याला अनिलदेव की ओर बढ़ाया। मीनाक्षी को वह देने चली तो वह स्वयं पलंग पर से उतर आयी और उसने वनजा के हाथ से चाय का प्याला, टोस्ट का प्लेट ले लिया। इसी समय अभिरामा की दृष्टि मीनाक्षी के हाथ पर पड़ी। उसने उनकी उँगलियाँ देखी। उसके दोनों हाथ की तीन उँगलियों में नगीना लगी अँगूठियाँ थी। अभिरामा को जाने कैसा लगा। उसका हाथ सूना था सिर्फ नाम के लिये कलाइयों में दो-दो चूड़ियाँ थी। नग लगी अँगूठी कहाँ ? उसके मन में आया, वह अपना हाथ छिपा ले। फिर उसे अपनी कही हुई बात याद हो आयी। सोने की चमक से चेहरे की दमक बढ़ती है व्यक्तित्व की नहीं। और क्या ? वह कलाकार की पत्नी है। यशोविजय उसे कितना प्यार करता है, प्राणो से अधिक। अहा, क्या कलाकार का स्नेह सबों को प्राप्त होता है ? वह मीनाक्षी से अधिक—बहुत अधिक भाग्यवती है। उसके मांग पर कलाकार की उँगलियों ने कुंकुम डाला है। उस कलाकार की उँगलियाँ समाज के दुराचार का नग्न चित्र खींचने में सिद्धहस्त हैं। लोग यशोविजय के व्यंग-चित्रों का लोहा मानते हैं। उसकी सूझ और सूक्ष्म विचारों के कायल हैं। वह प्रगतिशील कलाकार है। वह समाज की नैतिकता एवं आर्थिक दशा में आमूल परिवर्त्तन चाहता है। वह जीवन के सत्य को कला का रूप देता है, कल्पना की उड़ान को नहीं। अभिरामा को पूर्णतया याद है, एक दिन प्रगतिशील कलाकार संघ के वार्षिक अधिवेशन में भाषण करते हुए यशोविजय ने

कहा था—साथियों ! हमें उस नव-निर्माण की ओर झुकना होगा, जिससे हमारे मस्तिष्क, हमारे जीवन और हमारे आचार-विचार को प्राण मिले, हमारी दकियानुसी दूर हो, युगों से ध्वंसात्मक परम्परा का हमें अन्त करना होगा, हमारी टोली व्यापक सत्य की ओर प्रस्थान करने वाली होगी . . .।" इस पर तुमुल हर्षध्वनिनाद से सम्पूर्ण सभास्थल गुंजायमान हो चला था। लाखों तालियों का स्वर एक साथ वायुमंडल को वेधने लगा। तो केवल अँगूठी की बात ? नहीं, नहीं, इतनी छोटी-सी वस्तु पर इस प्रकार उसे आसक्त होने की आवश्यकता नहीं। किसी की किस्मत कोई छीन लेगा ? उस दिन कितने लोग यशोविजय से बातें करने को उत्तेजित थे, मगर समयाभाव के कारण वह सबों से बातें न कर सका। वह भी उसके साथ मंच पर बैठी थी। उसके कलाकार मित्र आप हैं श्रीमती यशोविजय, सुन कर उसके सामने भी आदर के साथ अपना माथा झुका देते थे। उसे अपने यशोविजय पर गर्व है, वह किसी से अपने को कम नहीं समझती। अस्तु !

अब अभिरामा भी चाय पीने लगी थी। वनजा ने कहा, "नहीं, डरने की कोई बात नहीं। आपको कुछ अनुचित न जान पड़े तो तब तक हमारे यहाँ ही रहिये।"

"परन्तु कब तक ?" अभिरामा ने पूछा।

"जब तक वे आ नहीं जाते।"

"इधर मैं एक हाल में प्रकाशित नया उपन्यास पढ़ रही हूँ। उसमें भूत-प्रेत की खूब ही दिलचस्प चर्चा है।" एक घूट चाय पीकर मीनाक्षी बोली।

अभिरामा ने पूछा, "उपन्यास से अधिक शौक है क्या ?"

"हाँ, कुछ शौक तो है ही।" बोली मीनाक्षी। उसका स्वर लचीला जान पड़ा।

"कहानियाँ भी पढ़ती होंगी !"

"हाँ, पहले पढ़ती थी। अब उपन्यास अधिक अच्छा लगता है, कहानी नहीं।"

"मॉडरेट और मनोवैज्ञानिक कहानियाँ आप अधिक पसन्द करती होंगी, मेरा ख्याल है।" अभिरामा ने कहा।

अनिलदेव और वनजा चुपचाप दोनों की बातें सुन रहे थे। मीनाक्षी ने अपना विचार प्रकट किया, "हाँ, जी।"

"भावों की अभिव्यक्ति के विषय में आपका क्या विचार है?"

"मैं यथार्थ से भागती नही। आज का विश्व-साहित्य कटु सत्य का समर्थक है।"

"वर्त्तमान युग की समस्यायों पर आज जिस साहित्य का निर्माण हो रहा है, उसके विषय में आपका क्या विचार है?" कुछ गंभीर मुद्रा में अभिरामा ने पूछा। इस पर अधिक असावधान होकर मीनाक्षी ने उत्तर दिया, "वह साहित्य स्थायी नही होगा। अच्छा होता, युग की समस्या को लेकर तैयार हुए कहानी उपन्यास के पाठक आज के अखबारों की कटिंग अपने पास संग्रह करते जायें।"

"यह तो प्रगतिशील साहित्यकारों के प्रति एक प्रकार का व्यंग है; किंतु आपको मालूम होना चाहिये कि साहित्य का इतिहास से गहरा सम्बन्ध है। और आज की घटनायें कल के इतिहास के लिये एक बड़ा ही प्रधान विषय बन जायेंगी। अगर आपकी हथेली पर एक भस्मावृत चिनगारी भी रख दी जावे तो आप गर्मी अथवा जलन अवश्य महसूस करेंगी, उसी प्रकार यदि आप में थोड़ी-सी भी भावुकता है तो आपके दृष्टिकोण पर युग की छाया पड़ेगी ही। यह बात सत्य से भी अधिक सत्य है, आप मानें या न मानें। मैं आपसे कहती हूँ, मनोविज्ञान के सिद्धान्त में मतभेद हो सकता है; दर्शन शास्त्र में दो व्यक्ति के विचार एक नहीं, दो हो सकता है, परन्तु जहाँ जिन्दगी को कायम रखने के लिये उसकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति का सवाल आयेगा, वहाँ दो मत नहीं हो सकता। मैं पहुँचे हुए योगी, पीर,

पैगम्बर और धर्मगुरुओं की बातें नहीं करती जो अपने को सांसारिक माया-मोह से भिन्न समझते हैं, मैं जन-साधारण की चर्चा कर रही हूँ, प्रत्येक इन्सान जीना चाहता है और जीने के लिये जिन साधनों की आवश्यकता है, पहले वह उसकी पूर्त्ति की बात सोचेगा और तब कुछ ! मनोविज्ञान को मानव-जीवन ने पैदा किया है, मनोविज्ञान ने मानव-जीवन को नहीं। आप मेरी सलाह मानिये तो उन कलाओं को उत्साह दीजिये, जिनसे छोटे-बड़े सबों को प्रेरणा मिलती है, नवीन स्फुर्त्ति मिलती है, जो परिस्थिति की चोट खाते-खाते ममहित हो चले हैं, उनके प्राणों का संस्करण होता है। आज की आधुनिकता आने वाले कल के क्षणों में प्राचीन बन सकती है, पर समाज के सामने स्वस्थ्य जीवन और उच्चादर्श की जो समस्या है यह कभी पुरानी नही पड़ेगी····।" अभिरामा बोलती जा रही थी। उसका गौर मुख कमल रक्ताक्त होता चला जा रहा था कि—"बहुत बोलती हे आप यह मान लिया, विचार भी अच्छे हे।—इससे भी सहमत हूँ ; किंतु यह सब थोथा आदर्श है, क्षमा कीजियेगा।" बीच ही में बात काट कर मीनाक्षी ने कहा। वनजा और अनिलदेव चुप रहे। अभिरामा का चेहरा तमतमा उठा। वे अपने को सम्हाल न सकी। उन्होंने चाय की प्याली अलग रख दी और टेबुल पर हाथ पटक कर कहा, "यह हमारी और आपकी कमजोरी है। हमारा ही बनाया हुआ आदर्श यदि थोथा रह जाता है तो इसमें हमारा दोष है। किंतु कोई भी आदर्श पहले थोथा ही होता है। आप अभी बच्ची है, पढ़िये, अनुभव कीजिये और तब सारी बातों में टाँग अड़ाइये।"

इस पर मीनाक्षी आगे फिर कुछ बोलना चाहती थी, परन्तु वनजा ने उसे इशारा कर दिया कि वह चुप रह जाये। मीनाक्षी वहीं चुप रह गई। मगर दूसरे ही क्षण अभिरामा ने और दीर्घ स्वर में कहा, "क्या कहा, मैं पढ़ती हूँ, घास नहीं काटती ? अरे, यह मैंने कब कहा कि आप पढ़ती नहीं हैं, क्या विचार है आपका, झगड़ा करने का ? जाने दीजिये, मै आपसे बहस करना नहीं चाहती।"

"आप निरर्थक बोलती हैं। मैंने कहाँ कुछ कहा है....।" इस प्रकार अभिरामा बोल ही रही थी कि डाक्टर हेमचन्द्र ने नीचे से उसे पुकारा। वह शीघ्र ही चली गई। उसके चले जाने के कुछ ही देर बाद तक अभिरामा वहाँ थीर भाव से बैठी रही। पीछे उठकर बोली, "बहन जी, मुझे क्षमा कीजिये। फिर मिलूगी।"

"क्यों, क्या हुआ। मीनाक्षी ने आपको डिस्टर्ब किया है, इसे मैं भी सोच रहा हूँ।" बोले अनिलदेव। अभिरामा के मुख पर उदासी दौड़ने लगी थी। उसने अपना होठ काटकर कहा, "नही, डिस्टर्ब करने की कोई बात नही। मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरे पिता जी के घर से आकर कोई मेरी प्रतीक्षा कर रहा है....।" और इसके बाद अनिलदेव उसे ठहरने के लिये आग्रह करते रहे मगर उसने एक न मानी और अपने घर पहुँचा देने के लिये उन्हें वाध्य करके छोड़ा।

———०———

(९)

आज एक सप्ताह बीत गया, अनिलदेव अभिरामा के घर नहीं गये। उस दिन जिस जल्दीबाजी के साथ वे उनके यहाँ से अपने घर वापस आ गई थीं, यह उन्हें पूर्णतया याद है। अभिरामा के उस दिन के व्यवहार पर उन्हें आश्चर्य और दुःख दोनों हो रहा था। दुःख इस बातका था कि वे उसे बड़े प्रेम और श्रद्धा के भाव से अपने यहाँ ले गये थे, बल्कि वे स्वयं पहले से आने को तैयार थी, उस पर वे एकाएक जाने क्यों लगी। लगा जैसे, यहाँ के लोग उसके मनोनुकूल नहीं हैं, लोगों ने उनका अनादर किया है, वे उपेक्षा का भाव लिये चली गईं। आश्चर्य इसलिये हो रहा था कि अपने जाने का कारण उन्होंने यह बतलाया कि उन्हें ऐसा आभास हो रहा है कि उनके घर पर पिता जी के यहाँ से आकर कोई प्रतीक्षा कर रहा है। यह भी गजब की बात है। बिल्कुल विचार-पारदर्शिता! वे इस प्रकार उत्तेजित हो गईं कि उन्हें रोकना असम्भव हो गया।

खैर, तो आज रविवार था। वनजा को मीनाक्षी वायलिन पर धुनें सुना रही थी। दिन के चार बज रहे थे। एक अलग कमरे में अनिलदेव ने घर का अलग दफ्तर बना रखा था। ऑफिस के बहुत से कागजात यहाँ पड़े रहते थे और छुट्टी के दिनों में वे उन्हें देखते-सुनते थे। अभी वे उसी दफ्तर में बैठे कुछ फाइलों को उलट-पुलट रहे थे कि नीचे से किसी ने उनका नाम लेकर पुकारा। वे नीचे आये। पूछा, "क्या है, कहिये ?"

"मैं यशोविजय बाबू के यहाँ से आया हूँ। यह चिट्ठी है....।" कहते-कहते उस आदमी ने वह पत्र अनिलदेव के हाथ पर रख दिया जो उसकी जेब में था। अनिलदेव बोले, "अच्छा। जवाब भी मांगा है क्या ?"

"नही, मुझसे कुछ नही कहा।"

यह कह कर वह आदमी चला गया। पत्रवाहक अभिरामा के पड़ोस का एक युवक था। अनिलदेव पत्र लिये लौट आये। उन्होने वनजा से कुछ न कहा। आकर वही बैठ रहे, जहाँ बैठे थे और पत्र खोल कर पढ़ने लगे। लिखा था :—

प्रिय अनिल जी,

मुझसे मिले कितने दिन हो गये। आप इधर बीच में फिर कभी मिले नही। इस प्रकार रुष्ट होने का क्या कारण है ? उस दिन आपके यहाँ मै अधिक देर ठहर न सकी—बहुत दुःख है। आपकी देवीजी के स्वभाव से मैं बहुत प्रभावित हूँ। उनकी व्यवहार-कुशलता ने तो मुझे मोह ही लिया।

इधर मेरे यहाँ एक अतिथि आ गये है। मन तो एकदम झल्लाया रहता है. मगर क्या करूँ, घर आये हुए मेहमान की खातिर करनी ही होती है। मैं समझती हूँ, दफ्तर का बहुत-सा काम आपके ऊपर पड़ा होगा, फिर भी एक दुःसाहस ! यदि अवकाश हो तो आज ही सन्ध्या काल में आप मुझसे तालाब पर के पार्क में मिलिये। मैं वहाँ आपकी प्रतीक्षा करूँगी। मकान में भय तो लगता ही है। इधर एक नया

बखेड़ा पैदा हो गया है। सुन कर आपको हँसी आयेगी। आप आश्चर्य में पड़ जायेंगे। रात्रि में सोते समय मुझे ऐसा लगता है जैसे कोई मुझसे झगड़ा करना चाहता है। कोई मुझसे उटपटांग प्रश्न कर उसका उत्तर चाहता है। मैं चुप रहती हूँ तो वह मुझे बोलने के लिये प्रेरित करता है। मैं उसे समझाती हूँ, मगर वह मेरे मन की बात नहीं समझता। तब मैं अपने मन को भी अपना मित्र नहीं बना पाती। देखिये, तो आप आइयें, अवश्य।

"लिटील"।

अभिरामा का यह पत्र पढ़ कर अनिलदेव वस्तुतः परेशानी में पड़ गये। यह सब यशोविजय के जाते ही आये दिन उनके दिमाग में क्या-क्या आन्दोलन मचने लगा है ऐसा जैसे वे पागल हो जावेंगी। बहुत सोच-विचार कर वे उठे और चले वनजा को वह पत्र दिखलाने। मगर आधा रास्ता आकर वे रुक गये। क्या मतलब ? अभिरामा को वनजा से कोई घृणा नहीं, वल्कि उससे खुश भी है; किंतु वह अनिलदेव को ही अधिक आत्मीय समझती है। और उसने उन्हें आत्मीय जान कर अपने मन का भेद उनके सामने खोल दिया तो इसका माने यह नहीं कि वे उसका प्रचार करें। उन्होंने पत्र पुनः छिपा लिया और कार्यव्यस्त हो गये। लगातार दो घंटे तक फाइल देखते रहे। किसी-किसी पर कुछ रिमार्क आदि भी दिया, मगर जिसे 'काम में मन लगना' कहते हैं—वह न हो सका। वे अन्यमनस्क भाव से कोई कागज देख ही रहे थे कि कमरे में प्रवेश कर मीनाक्षी ने कहा, "वाह जीजा, आप तो खूब हैं ! सन्ध्या हो गई, मगर फाइल का साथ नहीं छोड़ा। जब कागज से इतना प्रेम है तो आदमी से कितना प्रेम होगा ? मालूम है कि नहीं, छै बज रहे हैं।"

"छै बज रहे हैं.... ?" उसकी ओर देख कर पूछा अनिलदेव ने।

"हाँ, उठिये। नास्ता वगैरह कीजिये। मैं वायलिन बजा रही थी, आपने सुना या नहीं ?"

"सुना है... हाँ सुना है।" ऐसे बोले अनिलदेव जैसे मीनाक्षी को केवल बोध रहे हों। परन्तु मीनाक्षी भी चली गई नीचे। कागजी काम बंद कर अनिलदेव जड़वत् बैठे रहे। फिर उठ कर वनजा के पास आये। वनजा ने नास्ता करने के लिये कहा। वे बोले, "जरा स्नान करूँगा।" ठहरने की क्रिया में शीघ्रता देख कर वनजा ने पूछा, "देख रही हूँ, तुम्हारा कही जाने का मूड है। कहाँ जाओगे ?"

"यशोविजय के यहाँ।" वे बोले। वनजा बोली, "तबीयत उनकी अच्छी हो तो आने के लिये कहोगे।"

"अच्छा कहूँगा।" कह कर अनिलदेव वहाँ से चल पड़े। जाते समय बोले, "सीढ़ी का दरवाजा बन्द कर लो।"

वासर-विधाता महामार्त्तण्ड की स्वर्णिम किरणें अस्ताचल की गोद में छिप चुकी थी। गोधूलि का अंश चारो ओर व्याप्त हो रहा था। शहर की सड़कों पर गड़े बिजली के खम्भे शायद यह आशा दिला रहे थे कि बत्ती अब शीघ्र ही जलेगी। तालाब का वातारण अत्यन्त मनोहर हो गया था। पूरे छै दिन दफ्तर की फाइलों से सर लड़ाने वाले किरानी से लेकर ऑफिसर तक इधर रविवार को टहलने आते है। तालाब का जल झरना जैसा स्वच्छ और उज्ज्वल था। किनारे-किनारे कमल के कोमल पात छाये हुए थे। फूलों का कसा हुआ कोंपल जल में आधा डूबा और आधा बाहर दीख पड़ता था। कहीं-कहीं एक-दो मछलियाँ भी दीख जातीं। श्वेत पंख वाले बत्तकों का एक लघु समूह बीच में तैरता जा रहा है। घाट की सीढ़ियों पर बैठ कर प्राकृतिक दृश्य-प्रेमी इस समय का आनन्द ले रहे थे। एक ओर किनारे उत्तर की तरफ पार्क बना है। देश-विदेश के फूल हैं, लतायें हैं। सिमेन्ट और संगमरमर की रंग-विरंगी कुर्सियाँ देखते ही बनती हैं। मोटर साइकिल बाहर रोक कर अनिलदेव ने पार्क में प्रवेश किया तो देखा अभिरामा का पता नहीं है। वे मन-ही-मन कुछ बेचैन जरूर हुए, लेकिन एक कुर्सी पर चल कर बैठ रहे। उनकी दृष्टि तालाब में किल्लोल करते हुए बत्तकों

पर पड़ी, वे उन्हें देखने लगे। उदयाचल से चन्द्रमा निकलने लगा। आधा घंटा समय और बीत गया। तालाब के जल में उसकी लाल प्रतिच्छाया दृष्टिगोचर होने लगी। तभी एकाएक किसी के अचानक स्पर्श ने उन्हें चौंका दिया। किसी ने पीछ से आकर उनकी आँखें ढँक दी थी। साथ ही नारी-कंठ की मधुर मुस्कान-ध्वनि! खिलखिलाहट! "खोलिये न। मैंने आपको पहचान लिया है।" वे बोले। आँखें खोलने के लिये उन्होंने हाथ नही पकड़ा। इसके बाद अनिलदेव की आँखे खुल गईं। उन्होंने देखा, पीछे अभिरामा खड़ी है।

"फिर झूठ बोल दिये आप। ऑखें बंद करते समय आपने मुझे पहचाना नहीं, वरना देख कर आश्चर्य न प्रकट करते। सच कहिये, अनिल जी, आपको मेरी यह बेहयाई कहाँ तक पसन्द आयी। एक भारतीय नारी के लिये पराये पुरुष से अपना कोई भी अंग स्पर्श कराना पाप नहीं तो क्या है? अभी यदि मेरे इस व्यवहार को मेरे घरवाले देख लेते तो क्या समझते! मैंने नादानी कर दी, क्यों? मगर मन में आ ही गया तो क्या करूँ। आपको भी तो यह बुरा लगा होगा, कहिये न आप खुल कर क्यों नहीं कहते?" एक ही साँस में वह इतनी बातें बोल गई। अनिलदेव स्तम्भित होकर देखते रहे। उनसे एक प्रकार का उत्तर देते न बनता था। अभिरामा ने कहा, "चलिये, उधर कुर्सी पर बैठा जाये। स्थिर से बातें करना चाहती हूँ।" और आगे बढ़ी। अनिल उसके पीछे-पीछे चले। आज अभिरामा ने नया वस्त्र पहन रखा था। चन्द्रमा की भीनी-भीनी चाँदनी में उसका रूप-लावण्य सौगु ी शोभा विकीर्ण कर रहा था। आज उसने अपने जूड़े में फूलों का हार पिरोया था। साड़ी से सेन्ट की सुबास आ रही थी। पैर में काश्मीरी सैन्डल था। दोनों चल कर आमने-सामने की कुर्सी पर जाकर बैठ गये। अभिरामा तनिक और सम्हल कर बैठ गई।

"अच्छी तो हैं न? उस दिन आप बहुत जल्दीबाजी में चली गईं।" अनिलदेव ने कहा।

"हाँ, मगर आपसे सच बात बतला दूं ?" अभिरामा ने पूछा।

"बतलाइये ।"

"मेरे यहाँ उस दिन कोई नही आया था। मेरे आने के बाद मीनाक्षी ने कुछ कहा भी ?

"नहीं, वह तो आपके सामने ही चली गई थी। फिर अपने पिता डाक्टर साहब के साथ कही चली गई। रात में आयी नही। आप उसके विषय में क्या इतना सोचती है।" बोले अनिलदेव। इस पर अभिरामा ने हल्की हँसी हँस कर पूछा, "क्यों आप बतलाना नही चाहते क्या ?"

"कोई बात हो तब तो बतलाऊँ। कोई खास बात तो है नही।"

"उससे आपका क्या सम्बन्ध है ?" अभिरामा ने पूछा।

"सम्बन्ध कुछ नहीं। मकान मालिक की बेटी है। उनकी (वनजा) वजह से आकर बैठती है।"

"हूँ.... ।" कह कर अभिरामा ने एक उच्छवास छोड़ा और एक मिनट तक चुप रही।

"आज कल आप इस प्रकार घबड़ायी क्यो रहती है ?" अनिलदेव ने पूछा तो वह चौक कर उन्हें देखी और पूछा, "मैं घबड़ायी रहती हूँ, यह आपने कैसे जान लिया ?"

"वही आपका आज का पत्र.... ।"

"आप भी तो खूब हैं ! मेरे पत्र को आपने मेरी घबड़ाहट क्यों समझ लिया.... ?" और वह जोरो से हँस कर आगे बोली, "मैंने तो सच लिखा है, रात्रि में सोते समय एक काली-सी अस्पष्ट छाया मेरे सिरहा आकर रुक जाती है, मेरा मन बैचैन हो उठता है। और उसके प्रश्नों के विषय में तो मत पूछिये, मैं हैरान हो रही हूँ। आप पूछियेगा क्या प्रश्न है उसका, सो बतला भी नही सकती। यह मेरी विवशता है, और मैं तो इसे अपने वत्तमान जीवन की सबसे बड़ी विवशता समझती हूँ।"

"क्या प्रश्न आपके कानों में सस्वर गूजता है या यों ही. . . . ।" अनिलदेव की बात काट कर अभिरामा ने कहा, "नही, नही, उसके प्रश्न कानों को नहीं, हृदय को लक्ष्य करते है। आप विश्वास भी तो करिये।"

"आश्चर्य है !" कह कर अनिलदेव गंभीर-मुद्रा में कुछ सोचने लगे। बाद में पूछा, "मेरा ख्याल है, शायद यह स्वप्न में होता होगा।"

"नही, मै आपसे सच कह रही हूँ ऐसा स्वप्न में नही होता।" बोली अभिरामा। आगे उसने कहा, "अच्छा, मेरे यहॉ जो मेरे गेस्ट आये है वें डाक्टरी पढ़ रहे हैं। शायद आपने उन्हें नही देखा है। वे मेरे साथ कालेज में दो वर्ष पढ़े थे। इन्टमीडियट पास कर मैंने पढ़ाई छोड़ दी और उन्होंने मेडिकल ज्वायन किया। आपने उन्हें देखा तो नही है ?"

"नही, बिल्कुल नही।" बोले अनिलदेव।

"देखियेगा आप तो दंग रह जाइयेगा। बड़ा ही स्मार्टनेस है उनमें। एम० बी० बी० एस० की परीक्षा में सर्वप्रथम हुए है। अभी अविवाहित हैं। यदि आप उन्हें मेरे साथ बातें करते देख लें तो. . . . ।" अभी वह बोल ही रही थी कि कोई सज्जन के आगे बढ जाने पर अनिलदेव ने उत्तेजना के भाव में पूछा, "हाँ, क्या मै उन्हें आपके साथ बाते करते देख लू तो ?"

"हाँ, याद दिलाया आपने। आप देख लें तो आपको यह पूर्णतया विश्वास हो जायेगा कि लिटिल ने अपना आदर्श खो दिया है। मगर बात ऐसी नही है, इसकी ओर से आप इतमीनान रखें। आपके मित्र की अमानत शिव-निर्माल्य की भाँति है। उस पर किसी की गंदी दृष्टि नहीं पड़ सकती। आप यह न समझ लीजियेगा, यह त्रिया-चरित्र, सभी जाल है, बल्कि मैं ये सारी बातें अक्षरशः सच कह रही हूँ। किंतु कोई कुछ करे, दृष्टिकोण सबों का एक कैसे होगा। इसलिये आपसे कह दिया है। कारण यह है कि पत्नी के अस्तित्व, पत्नी की शक्ति और उसके सभी आचार-विचार अभिलाषाओं पर, पति धन की रक्षा करने वाले सर्प की भाँति बैठा रहना चाहता है। आपने कुछ और तो नहीं सोच लिया न ?" यह कह कर

अभिरामा ने पूछा। अनिलदेव से कुछ कहते न बनता था। वे क्या बोलते। अभिरामा स्वयं शंका और समाधान दोनों किये जाती थी। अनिलदेव को आपत्ति करने के लिये कोई स्थल न मिलता था। अतः वे बोले, "नही, मैं और क्या सोचूंगा।,'

पार्क की शोभा और बढ़ती जा रही थी। स्तम्भ पर बिजली के बल्व जल रहे गये। सरोवर के स्वच्छ जल पर चंद्रमा का लाल प्रतिविम्व नृत्य करने लगा था। जल के वेग के साथ आकाश-दीप लहरों मे लहर उठते थे। ठंडी हवा चलने लगी थी। चारो ओर शान्ति थी; अभेद्य नीरवता। अब अभिरामा ने अपने पैर भूमि से समेट कर कुर्सी पर रख लिये। दोनों मौन रहे थोड़ी देर। अंत में अभिरामा ने पूछा, "सच बोलिये न, आप मेरे बारे में क्या सोचते है ?"

"सोचता क्या हूँ। चाहता हूँ, आपकी ये चिन्तायें दूर हो जायें। देख रहा हूँ, इधर आप काफी दुर्बल भी हो गई है। आपका स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिरता जा रहा है। आप इतना अधिक सोचना छोड़ दीजिये।"

"आप न कहते है कि इतना अधिक सोचना छोड़ दीजिये। मै ही क्या चाहती हूँ कि अधिक सोचू। मगर वह तो अपने आप हो जाता है। इसमें मेरा कोई वश नहीं। सम्भव है, डाक्टर लोग बौद्धिक असंतुलन (Intellectual Disorder) कहें, मगर मै इसे मानने को तैयार नही। यह मेरा बौद्धिक असंतुलन नही है क्योकि मै जो कुछ भी सोचती हूँ, उसका कुछ अर्थ होता है। मेरी बातें यों ही अनाप-सनाप नही होती। रात ुझे मकान में ऐसा लगता था कोई मुझसे झगड़ा करने के लिये तैयार है, इसमें भी मुझे सन्देह नही।" बोलते-बोलते वह स्वयं झिझक उठी जैसे उसे इतनी लम्बी बात स्वयं पसन्द न आ रही हो। उसने अपनी बात आप ही काट कर कहा, "जाने दीजिये, इस समय आपसे मेरा एक सवाल है। सुनना है तो सुनिये।"

"कहिये न !" बोले अनिलदेव। अभिरामा ने कहा, "देखिये, मेरा घर क्या है आपके मित्र का घर है। और मित्र के घर को आप अपना ही समझिये। यदि मै यहाँ न रहूँ तो आप उस घर की हिफाजत कीजियेगा। क्योंकि नारी घर की लक्ष्मी ह। मेरे रहने पर ऐसा लगता है कि वह घर वीरान हो जावेगा।"

"आप घर क्यों छोड़ देंगी। इसका कारण क्या है। पहले आप कहती थी मै घर छोड़ कर नहीं जाऊँगी।" पूछा अनिलदेव ने। अभिरामा इस पर उदास हो गई। उसकी आँखें झुक गई।. उसके होठ फरफराये, आवाज न निकल सकी। अनिलदेव ने उसकी यह दशा देख कहा, "आप चाहें तो इसका जवाब नही भी दे सकती है। मुझे आपकी घबड़ाहट देख कर दुःख होता है।"

"नही, इसका कारण आप मत पूछिये। इसी में भला है।"

"हाँ, मैं नही पूछूगा।" बोले अनिलदेव। अभिरामा ने एक बार तालाब में तैरते हुए बत्तकों के झुड को देख कर कहा, "नही, यदि आप जानना चाहते है तो जान लीजिये। मै आपको बिना बतलाये मानूगी भी नहीं। देखिये, दलील नदी का बाँध है जो कभी भी ूट जा सकती है, लेकिन सत्य हीरे का पत्थर है जो सवेर नही तो देर कर अपना चमत्कार अवश्य दिखलाता है। उनकी अनुपस्थिति में लोग मुझसे मिलने आते है, बैठते है, हँसते-बोलते हैं। मै उनकी खातिर करती हूँ। मगर लोग क्या सोचेंगे। पड़ोस की औरतें पूछती है तो मै अपना रिश्तेदार बतला देती हूँ। किसी को उनका दोस्त बतला देती हूँ। मगर फिर भी यह सब कुछ मुझे अच्छा नहीं लगता। बगल में एक लड़की रहती है। उससे मेरी काफी घनिष्टता है। इसके पहले मै उसे अपने मैके के लोगों के विषय में काफी परिचित करा चुकी थी। मेरे जानते कोई सदस्य अपरिचित नहीं रह गया था। कम्बख्त को सारी बातें न जानें कैसे याद रहती है। इस युवक (अतिथि) का परिचय जब मैंने उसे अपना चचेरा भाई कह कर दिया तो वह सहम गई और

पूछा, "सखि, तुम मुझसे छिपाती भी हो ?" मैंने पूछा, "क्या ?" तो वह बोली, "इनके विषय में तो तुमने कभी चर्चा न की थी।" मेरा मुंह फक्क पड़ गया। मेरा चेहरा लाल हो उठा। किसी प्रकार बात बना कर मैंने उसे टाल दिया, मगर मुझे संतोष नही हुआ, हाँ।" कह कर रुकी अभिरामा।

"जाने दीजिये। इतनी छोटी-छोटी बातें न सोचा कीजिये। इससे क्लेश बढ़ेगा ही, घटने को नही।" बोले अनिलदेव।

"आप मेरी बातों को समझते नही, यों ही सुन कर टाल देते हैं अनिल जी। लगता है, जैसे कोई पागल राह पर बक रहा हो। छोटी-छोटी बातों को आप क्या समझते हैं, वे मनुष्य के लिये एक बार शत्रु बन जाती हैं। मैं आपसे पूछती हूँ, उनकी अनुपस्थिति में लोगो का मेरे यहाँ आना कहाँ तक उचित है ?" पूछा अभिरामा ने।

"इस तरह आने वाले लोगों में से तो एक मै भी हूँ।"

"बस, बुरा हुआ ! इस बात को अपने ऊपर क्यो ले लिया ? आप मुझे नही समझते। मै गरीब हूँ इसलिये मेरी बातों की दिल्लगी उड़ा दी जाती है। मगर आपने क्या समझ लिया, मैं यह सब आपको लेकर कह रही थी, और आपका मेरे घर पर आना अच्छा नही लगता तो इसीलिये पार्क में बुलाया है ?" बिल्कुल उत्तेजित होकर अभिरामा ने पूछा। उसकी आँखों में करुणा का भाव उदय होने लगा था। अनिलदेव संयत होकर बोले, "नहीं जी, मैंने यों ही कह दिया है, देखें आप क्या कहती है।"

"वाह, आप भी खूब हैं ! यह कौन-सा एक्सपेरिमेन्ट है ! आपने मुझे क्या समझ रखा है ; आपने मुझे क्या समझ कर ऐसा कहा . . . .।" अभिरामा पूरा बोल भी न पायी थी कि उसकी आँखें जल से भर आयी और वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। अनिलदेव ने कहा, "पार्क है, ऐसा न कीजिये।" अभिरामा ने काँपते हुए स्वर से कहा, "आपको मेरी कसम है, इस समय मुझसे कुछ न बोलिये। आपको कोई काम हो तो जा भी सकते हैं।"

१०

यशोविजय केवल एक कांतिदर्शी कलाकार ही नही, एक व्यक्तित्व भी है। अपनी धर्मपत्नी अभिरामा से बिछुड़े उसे एक माह हो गया। बीच के क्षणों में वह इधर-उधर भटकता रहा है। रेलगाड़ी पर चढ़ा, जिस स्टेशन पर मन में आया उतर गया। जहाँ मन में आया ट्रेन की जंजीर खीच दी और गार्ड के आते-आते लाइन से आध मील दूर। कई शहरों में, इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ, गया। अखबार जहाँ से निकलते है वहाँ जाकर मैनेजर से मिला और अपने उपयुक्त किसी नौकरी की पूछताछ की। बहुतों ने आश्वासन दिया, सो तो आश्वासन ही रहा। कुछ ने दूसरे ही दिन से काम करने के लिये बुलाया भी, एक-दो ने अग्रिम रुपये भी दिये यह कह कर कि शहर का खर्च है। कलाकार ठहरे, पास में पर्याप्त रुपये नही होगे। तब तक काम चलावें, जब तक महीना का अंत नही होता। मगर यशोविजय ने जो व्यवहार उनके साथ किया, वह स्मरणीय है। सब की बात में 'हाँ में हाँ' किया और एक दिन दो दिन बाद करके सबको कह आया, उसे नौकरी नही करनी है। जिन्होने एडवान्स देकर वादे में बाँध रखा था, उनके पैसे भी वापस कर आया, बदले में क्षमा तक न मागी। उल्टे चलते-चलते कहा, "क्षमा कीजियेगा, आप भी स्वतन्त्र नही है। इन रुपयों में कुछ नही है। प्रेस का मैनेजर होकर अपने को बहुत कुछ समझ लेना भूल है। मानता हूँ, आपके अंडर (Under) में संपादक हैं, सह-संपादक हैं, प्रूफ रीडर है, मशीनमैन है, कंपोजीटर और दफ्तरी हैं। मगर सभी एक दूसरे को चूसने वाले है। केवल कारों में टहलने वाले करोड़पति सेठ ही समाज का शोषण नही करते। आज का मनुष्य जानवर से भी अधिक खतरनाक हो गया है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषक है। प्रेस के मजदूरों को आप कम-से-कम वेतन पर बहाल करते हैं। जब उनकी नौकरी पुरानी होती है, वे आपसे अपना अधिक हक चाहते हैं तब आप उन्हें निकाल कर नये नौकर रख लेते हैं, यह व्यक्ति का शोषण नहीं है तो क्या? आप कहियेगा, इसमें मेरा क्या बच जाता है? इसमें सही अर्थ में आपका

ईमान, आपकी मनुष्यता दोनो चली जाती है। रह गई बात गलत अर्थ की, सो गलत को ही आप सही समझ लेते हैं। कम वेतन पर नौकरों को रख कर काम चलाने से आपका मालिक खुश होता है। आप इस पद पर से हटाये नही जा सकते। जरा-सा प्रेस का नुकसान दिखला कर तो अनुभव कीजिये। यह हडसन कार तुरत छीन ली जावेगी। संपादक संपादकीय-विभाग का शोषण करते है और संपादक का शोषण अखबार का प्रोप्राइटर करता है। मुझे भी यदि नौकर रखते है, तो वही बात होगी। ये पेशगी के रुपये आपने कोई मेरे लिये नही, बल्कि कलाकार यशोविजय को घेर रखने के लिये दिये है। जी अच्छा, अब चलता हूँ।"

मैनेजर मुँह देखते रह जाते और वह दफ्तर से बाहर निकल आता। बाहर निकल जाने पर रूमाल से उसे अपना मुख पोंछना पड़ता, रूमाल भीग जाता था। पसीना से वह धूल जाता। फिर जब वह आगे के लिये चलता तो उसे अभिरामा की बातें याद आ जाती, "कलाकार का जीवन संघर्षशील होता है, किंतु हो सके तो उसके निवारण का उपाय अवश्य ही करना चाहिये।"

"कलाकार की गोद में संघर्ष दुधमुँहा बच्चा बन कर खेलता है।"

"एक बच्चा ही सयानी माँ को परेशान किये रहता है, याद रखो।"

"किंतु बच्चे को माँ चाहे जितना भी पीटे, मगर वह उसी की गोद में छिप कर सोना चाहता है।"

"ये बातें भावपूर्ण हैं, प्रैक्टिकल बनो तो अच्छा होगा।"

"क्या चाहती हो, मै कहीं नौकर हो जाऊँ ?"

"यह मैने कब कहा। मगर इतने कोमल न रहो। अमुक अखबार ने पिछले वर्ष तुम्हारे कितने कार्टून प्रकाशित किये, मगर आज तक मनीआर्डर आया ? उल्टे पत्र भेजते हो तो उसका उत्तर भी नही देते। मै कहती हूँ, एक हाथ से रुपये लो और दूसरे हाथ से कार्टून दो।" ये बातें अभिरामा

की थीं जिन्हें वह ट्रेन के डब्बे म बैठा याद करता। ट्रेन अपनी गति में आगे बढ़ती जाती। ममीरे का सूरमा और तानसेन की गोलियाँ बेचने-वाले आते-जाते रहते। वह कुछ भी नही सुन पाता था। वह यह सब वहिर्जगत् की बातें कुछ भी सुनना नहीं चाहता। इच्छा होती है कान ही बंद कर लें। मगर अगल-बगल के मुसाफिर न-जानें क्या समझते। वह व्यक्ति के स्तर से ऊपर-ऊपर चलना चाहता है। कला का आदर्श वह इतना ऊँचा उठाना चाहता है कि मनुष्य देवता बन जाये, धरती पर आकाश उतर आये। वह प्रत्येक को विचारक, सूक्ष्मद्रष्टा देखना चाहता है, शायद यही उसका पागलपन है। घर को छोड़ने के बाद ऐसा लगता है जैसे वह घुमक्कड़ हो जावेगा, इधर-उधर यों ही मारा फिरेगा।

दिल्ली, कानपुर, टुडला, लखनऊ में भी टहला। कही स्थिर चित्त होकर रह न सका। अंत में वह पटना होता हुआ राँची पहुँचा। यहाँ पहुँच कर चर्च रोड में एक हलवाई से घनिष्टता बढ़ा ली, उसी की मिठाई की दूकान थी। वह उसीके यहाँ खाता, दूकान में सोता और तीन बजे दिन से रात बारह बजे तक का समय सिनेमा-हॉल के पास खड़ा रह कर व्यतीत कर देता। हलवाई उसकी यह हालत देख कर जब कभी पूछता· व्यतीत "तुम यहाँ क्या करने आये हो?" तो उत्तर देता, "एक बिजनेस के काम से।"

"कौन-सा बिजनेस है?"

"मिठाई बनाओ मिठाई, यह बिजनेस तुम्हारी समझ का नहीं।" बोलता यशोविजय। उसकी उर्दू मिश्रित हिंदी सुनने वालों को बहुत प्रिय लगती थी। मगर हलवाई, आखिर बनिया क्लास का था। वह पूरियाँ और मिठाई की कीमत लेता था, सोने के स्थान का कोई मूल्य नहीं। हलवाई को एक बार फटकार बतला कर यशोविजय फिर मुस्करा कर कहता, "बुरा मान गये भैया? इसमें बुरा मानने की कोई जरूरत नहीं। जिंदगी में एक ही इन्सान सारी बातें नहीं समझ लेता। उदाहरण के लिये, तुम मिठाइयाँ बना सकते हो, मगर मुझसे पूछो, गुलाब जामुन कैसे बनता

है, अपना-सा मुँह लेकर रह जाऊँगा। निकलेगा जवाब कुछ मुख से, कुछ नहीं। हाँ, ये बात है।" हलवाई यहाँ अपनी प्रशंसा समझ कर चुप रह जाता, हँस भी देता। इसी क्षण भीड़ होती ग्राहकों की। लोग खाने आते, पूरियाँ, मिठाइया सड़कों पर फेंकी जाती। क्षुधात्रस्त कुत्ते जूठे पत्तल पर टूट पड़ते। भिखारी लक्ष्मी के पुत्रों से पैसे माँगते, कहते, "पैसे न दोगे तो कुछ खाने के लिये ही सामान दिलवा दो।" धनी-मानी, रईस के बच्चे उस कमजोर, जर्जर भिखारी को डाँट देते, कहते, "हटो सामने से।" उधर पत्तल पर कुरुक्षेत्र मच जाता, कुत्तो का मुख लहू-लुहान हो जाता। भिखारी की धँसी-धँसी आँखें उनकी ओर घूर कर देखती और तब उसका हाथ सड़क पर पड़े पत्थर के रोड़ो की ओर आकर्षित होता। वह रोड़े लेकर कुत्तों पर दैत्य, शेर की भाँति आक्रमण करता, कुत्तो को पीटता, कुत्ते जूठे पत्तल छोड़ कर भाग जाते। पैसे वाले चुपचाप खड़े हँसते, तमाशा देखते थे। भिखारी मिठाइयो से लथपथ पत्तल लेकर, लेकर क्या, उसे बटोर कर सड़क के किनारे बैठ कर खाने चलता कि ग्राहक हलवाई के नौकर को ललकारते, "मारो-मारो कुत्तों, का भोजन भी इस पापी ने छीन लिया।" और तब नौकर पूरे चार हाथ की लाठी लेकर भिखारी की पीठ पर पीछे से जाकर दे मारता। दुर्बल एवं निरीह भिखारी के हाथ से वह जूठा पत्तल छूट पड़ता और छूट कर पास के गंदे नाले में गिर जाता था। भिक्षुक की पीठ पर लाठी के दाग उखड़ आते, कभी-कभी रक्त भी बह जाता और तब यशोविजय का हँसमुख चेहरा काला पड़ जाता था। एक भीषण क्रान्ति की लपटों में वह जलने-सा लगता और हलवाई से 'अभी आता हूँ भैया' कह कर न-जाने कहाँ चला जाता था। इधर कई रात से वह भूखे सोता रहा है, कोई चिंता नही। कुछ नही करेगा वह। किसी का धन नहीं छीनेगा, किसी से मदद नही लेगा, किसी से इमदाद के लिये इल्तिजा न करेगा। वह बेइमानी से धन नही कमायेगा, वह अपना वह पेट नही भरेगा, जिस एक की पूर्त्ति में हजारों की क्षुधा तड़पती रह जाती है। वह जीवन के उस सुख को कदापि प्रश्रय देने को तैयार नहीं, जिस के कारण हजारों की

आशायें निराशाओं में परिणत हो जाती है। वह भावुक है, कलाकार, कला का कुशल मर्मज्ञ, सुधी-साधक ! कभी वह एकांत में बैठ कर सोचता, वह भिखारी–; भिखारी हुआ तो कैसे ? क्या वह जन्मजात भिखारी था, या उसमें भिक्षा माँगने की प्रवृत्ति बचपन से थी, इस घृणित कार्य की ओर उसका जन्मजात झुकाव (Inherent tendency) ही था। मगर क्या भिक्षा माँगने की प्रवृत्ति भी कोई प्रवृत्ति है ? मगर संसार है । परमेश्वर ने हमारे हाथ में ाच-पाँच दस ऊँगलियाँ दी है, सब की नाप एक नही, सब की रूप-रेखा समान नही, इसी समाज में पढ़े-लिखे भी है, मूर्ख भी। कोई मनोविज्ञान का डित है तो कोई इसका नाम तक नही जानता। किसी को जुआ खेलने का शौक है तो किसी को शतरंज खेलने का। किसी को गंगाजल पीने पर विश्वास है तो कोई ताड़ी पर निसार है। किसी को हरि-चर्चा पसंद ही नही, तो किसी को रामलीला का दल ही रखने का शौक है। तो भाई मेरे, यह दुनिया है, दुनिया ! आज यशोविजय ही जो समाज में अपनी प्रधानता समझता है तो वह क्यो ? इसका कारण क्या है ? उसकी तरह यदि सभी कार्टून बनाते होते, प्रत्येक व्यक्ति यदि चित्रकला का पूर्ण रूप से चतुर चितेरा होता तो उसमें क्या खास बात पायी जाती ? ये तो हमारे बीच की बात है। यशोविजय सोचते-सोचते इससे भी ऊपर उ ता, परमेश्वर की सृष्टि को ही क्यों न लें हम ? मान लिया, मानव ब्रह्म का रूप है, इसीलिये तो कहा है, अहं ब्रह्मास्मि ! ब्रह्म को यदि चिरंजीवी कहा जाये तो यह बहुत हल्की-सी बात हो जावे ी, सका अस्तित्व प्रज्ञा के परे है। सन्यासियो ने इसे समझने की चेष्टा की है, जहाँ तक उनका विचार पहुँच सका, उन्होंने लोगों को बतलाया भी है, लिखा भी है, मगर सीमा पर किसी व्यक्ति के पहुँचने की पुष्टि नही की जा सकी है, हाँ ऐसा अन्दाजा भर लगाया जाता है। इस ब्रह्ममय जगत् में मानव है, ठीक है, वह शक्ति की उपासना, योग की आराधना, आदि एवं अनादि शक्ति की साधना करेगा, सूक्ष्म विचारो से हृदय को मथ कर उसम शुद्धता का अमृत घोलेगा, माया की सतह से ऊपर

उठेगा, इसके बाद भी कोई तेज है। कोई दैवी चमत्कार है समझेगा, मगर सर्प का जन्म किस लिये हुआ, बिच्छू क्यों पैदा किये गये। गंदे जल में कीड़े क्यों हुए? यह भी तो एक प्रश्न है। समाज का इसमें दोष नहीं। धनी-अमीर प्रारम्भ ही से होते आये हैं। शास्त्र-पुराणों की बात लें। कहते हैं, पुण्य करो तो इस नश्वर शरीर से छुटकारा मिलेगा। आत्मा को इस मायावी संसार से मुक्ति मिलेगी, हमारे पापों का प्रायश्चित होगा। यह तो हुआ पाप, अथवा कुकर्म के बाद की बात। हमने अपराध किया, परमेश्वर ने हमारे जीव को शरीर में प्रवेश कर दिया, लेकिन जब संसार की आदि सृष्टि हुई, जब संसार में सर्वप्रथम मानव का जन्म हो रहा था तो उसके शरीर में जो जीव डाला गया उसने कौन-सा अपराध किया था, उसका कौन-सा धर्म था, कौन-सी पाप-पुण्य की प्रणाली थी? आदि।

हाँ, तो इसी प्रकार यशोविजय उचित भोजन न मिलने और अधिक भावुक होने के कारण दिनानुदिन दुर्बल होता चला जा रहा था। हलवाई उसे अपने यहाँ से निकालना इसलिये नही चाहता था कि यशोविजय के मिष्टभाषी होने के कारण ग्राहक दूकान पर देर तक ठहरते, उसका गप सुनते और हिसाब से अधिक नास्ता करते, मिठाइयाँ खरीदते थे। यशोविजय भी सोचता अवश्य कि उसे कोई नौकरी कर लेनी चाहिये, मगर साहब की डाँट, कलाकार होने का स्वाभिमान और कला की निरन्तर पूजा की श्रद्धा उसे पथ-विपथ कर देती।

(११)

इधर यशोविजय केवल दिन का भोजन करता था। वह भी साधारण, पास में पैसे बहुत कम थे, बचा-बचा कर खाना पड़ता था। इसी समय की घटना है। वह कहीं से टहलता आ रहा था। मस्तिष्क में इतने विचार संग्रहीत हो गये थे कि उसे बिना व्यक्त किये चैन मिलना असम्भव था। और फिर उसके विचार, धरती के नही, बल्कि आकाश के विचार कहिये। वह तो आकाश के उस पार की भी सोच सकता था। एक जगह छोटा-सा

पुल और उसकी बगल में विस्तृत घास से भरा मैदान था। वह वहाँ जाकर बैठ रहा। सन्ध्या हो चुकी थी। वह यों ही शून्य की ओर देखता विचारों में डूब रहा था। यह सब संसार की बातें क्या है। माँ-बाप की वासना ने पुत्र का जन्म दिया। परिवार और नाते-रिश्ते में खुशियाँ मनायी गई, दुल्हन ने पुत्र-रत्न पैदा किया है। बच्चा धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। उसकी पढ़ाई का प्रबन्ध हुआ। पढ़-लिख कर वह बड़ा हुआ। उसकी भी शादी हुई। वह किसी भाँति नौकरी, बिजनेस से धनोपार्जन करने लगा। उसे भी बच्चे पैदा हुए। वह उनकी चिन्ता में लगा। उसके जो प्राण शेष रह गये है उनकी शक्ति, उनका सारा प्रकाश अपने बच्चों और अपनी स्त्री को सुख देने में लगने लगा। उम्र बीतती गई। एक दिन उसी बच्चे ने अपने बच्चे की शादी की। स्वयं वृद्धावस्था की ओर पैर बढ़ाये। एक बार वह समय भी आया, वह बीमार पड़ा, पुत्र-पत्नी को सामने देख कर मोह उत्पन्न हुआ। उसने जीवन में कुछ धन-संचय ऐसा किया था जो सभी लड़कों को पूरा ज्ञात नहीं। लड़के जानते है कि उसके पिता के पास कुछ गुप्त धन भी है। वे सभी उस धन-प्राप्ति के लिये बेचैन है। बीमार सोचता है, धन किस लड़के को दे। उसे किसने अधिक प्यार किया है। इस समय कौन उसकी अधिक सेवा कर रहा है। उसके नेत्र आँसू से भर आते हैं। पत्नी आकर कहती है, "तुम इस प्रकार दुर्बल होते चले जा रहे हो। मेरा क्या होगा? परमेश्वर न करे, तुम्हारा बाल-बाँका हो।" और फिर इसके बाद उसकी मृत्यु हो जाती है। तो प्रश्न यह है कि उसके जीने का अर्थ क्या था, और उसके मरने से ही क्या हुआ? एक भिखारी का ही बच्चा, एक मोहजेदार का ही व्यक्तित्व, एक कबीले वाले की ही वस्ती, यह सब क्या है? न-जानें ये सभी जीवन को किन आँखों से देखते है। क्या जीवन यही है कि किसी प्रकार से भोजन और वस्त्र का उपार्जन कर जियो, अपनी आयु बीता लो और फिर मृत्यु को प्राप्त करो। छिः ऐसा जीवन न भी मिले तो समाज का क्या नुकसान हो जायेगा? आज के मानव-समाज में वैसे व्यक्ति की

आवश्यकता नही है जो निरर्थक जीते है, जो केवल अपने लिये जीते हैं। हमें जीना चाहिये, केवल जीने के लिये ; किंतु रहना चाहिये समाज की भलाई के लिये एक आदर्श बन कर, एक उद्देश्य बन कर। किंतु क्या व्यक्ति-व्यक्ति आदर्श बन सकेगा....।

यशोविजय का उपरांकित प्रश्न अधूरा ही था कि एक सज्जन उसके सामने आये और उसे घूर कर चार कदम आगे चले गये। फिर लौटे, इसे देखा और लौटने लगे। यह क्रम पॉच मिंट तक चलता रहा। अंत में वे उसके समीप आकर बैठ रहे। साधारण तौर से नम्र शब्दों में यशोविजय ने उनका परिचय प्राप्त किया। वे सज्जन एडवोकेट थे, यशोविजय ने अपना असली परिचय न दिया। उसने बतलाया कि वह कानपुर का रहने वाला है। अपने रिश्तेदार के यहॉ आया है। दोनों कुछ देर वही बैठे मुक्त वायु का सेवन करते रहे। बाद में वार्त्तालाप भी प्रारम्भ हो गया। बहुत देर बातें होते-होते विषय आ गया 'कला और संस्कृति' (**Art and culture**)। आर्ट शब्द ही ऐसा था जो यशोविजय के बदन में एक प्रेरणा भरने लगता। एक बात उसने कही, "अब लोगो ने कला को कला नही, धनोपार्जन और मनोरंजन का सामान समझ लिया है।"

"आज कलाकार भी तो वैसे ही पैदा हो गये है। जहॉ देखिये, वहीं कलाकार! कला के नाम पर 'कलाकार' शब्द की हत्या करते है। अधिक योगियों के रहने से मठ उजाड़ हो ही जाता है। प्रत्येक व्यक्ति कलाकार होना चाहता है। होने की बात अलग छोड़िये। कलाकार होने से कलाकार कहलाने का शौक लोगो में अधिक है। साधारण भावुकता लेकर लोग उनका अपना जीवन नष्ट कर देते हैं। न सफल कलाकार हो पाते हैं, न जीवन सुखी हो पाता है। किसी नवयुवक को लीजिये, एक छोटी-सी कहानी मुश्किल से छप गई, चाहे वह कहानी किसी विदेशी लेखक का अनुवाद ही क्यों न हो, बस वे समझ लिये अपने को कलाकार। अब उनमें कलाकार का स्वाभिमान भी आ गया। वे नौकरी नही करेंगे, वे किसी का रोब नहीं सहेंगे। किसी चित्रकार की बात लीजिये। मुश्किल से उसके बनाये चित्र

प्रकाशित हुए। मुश्किल से नही कह कर यों कहिये एक अच्छे चित्रकार हैं। बस, झटपट नाम के आगे कलाकार। कलाकार की भाँति लम्बे-लम्बे बाल, ढीला कुरता, मूछें साफ और मुस्कुरा-मुस्कुरा कर बातें। कलाकार का दम्भ! आज कल लोग कलाकार होकर अपने को देवता से भी अधिक ऊँचा समझते है। यह सब क्या है ? समाज ऐसे-ऐसे कलाकारों का वहिष्कार नही तो क्या करेगा। कलाकार....।"

एडवोकेट महोदय बोलते जा रहे थे। यशोविजय को रोमांच होता जा रहा था। उसने बीच ही में बात काट कर कहा, "तो कलाकार दूसरे की मातहती स्वीकार कर ले, आप इसका समर्थन करते है ?" एडवोकेट ने कहा, "हॉ, अगर परिस्थिति कहे तो कर ले। युग की बात है। मेरी मौलिकता नही। एक बार देश में सामंतशाही भी थी। उस समय कलाकार राजदरबारो में आमन्त्रित किये जाते थे। वे अपनी कला का प्रदर्शन करते और उसके बदले रुपये, अशर्फियॉ इनाम पाते थे। आज वह जमाना नहीं है। आज कलाकार केवल हाथ पर हाथ धरे कला से जीवन के सभी साधन मांगें तो वह मिलना असम्भव है। मातहती स्वीकार का समर्थन मैं इस अर्थ में करता हूँ कि कला को विकास के पथ पर ले चलने के लिये कलाकार का जीना अति कआवश्यक है। और जीने के लिये भोजन, वस्त्र भी प्राण की तरह आवश्यक हैं। मैं समझता हूँ, कलाकार से लक्ष्मी भागती है, उसके पास अर्थ-शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, परन्तु उसे कला की सेवा भी तो करनी है उसके लिये उसे कुछ-न-कुछ करना ही होगा। वह मातहती इसलिये न स्वीकार कर ले कि उसे पैसे कमा कर राजा बनने का शौक है, वह मातहती इसलिये न मान ले कि उसे किसी का अनिष्ट करना है, बल्कि अपने को कायम रख कर समाज को स्वस्थ एवं विशुद्ध कला दे सके।"

"मातहती स्वीकार करने से अच्छा होगा यदि कलाकार अपने प्राण दे दे।"

"बहुत खुशी की बात है। जिस कलाकार का यह सिद्धान्त है उसे यथाशीघ्र आत्म-हत्या कर लेनी चाहिये। यदि वह आत्म-हत्या नही करता तो वह घृणा का पात्र है। मेरी समझ में तो वह कलाकार है ही नही। जो संघर्ष से सदैव दूर-दूर चलना चाहता हो, वह कलाकार क्या होगा। वैसा कलाकार चाहे जितनी जल्द आत्म-हत्या कर ले उतना ही उत्तम। समाज को ऐसे कलाकार की आवश्यकता नही।" एडवोकेट ने बड़े ठाट के साथ उत्तर दिया। यशोविजय एक क्षण उसका मुख देखता रहा। अब वह अपनी ओर से कुछ कहना ही चाहता था कि एडवोकेट महोदय के मित्र उन्हें ढूढते-ढूढते वही आ पहुँचे और उन्हें ले जाने लगे। यशोविजय को ऐसा लगा जैसे उसे मूर्च्छा आ रही है, वह तिलमिला उठा। जाते-जाते एडवोकेट ने कहा, "अच्छा, चला भाई साहब! आपको कलाकारो से प्रेम है, अच्छी बात है।" यशोविजय के मुख से यो ही निकल गया, "मुझे आपसे मिल कर बड़ी खुशी हुई।"

एडवोकेट अपने मित्र के साथ चले गये। यशोविजय वहाँ से उठा और सीधे सिनेमा हॉल के पास पहुँचा। अपार भीड थी। लोग टिकट लेने के लिये पंक्तिवद्ध थे। फर्स्ट और सेकेंड क्लास का प्लेट टँगा था—"हाउस फुल"। दुर्बल होने के कारण वह पैदल चलने में असमर्थ था। अतः बहुत धीरे-धीरे चलना एकदम स्वाभाविक था। वह टिकट घर की खिड़की के सामने खडा रहा। टिकट की ब्लैक मार्केटिंग चल रही थी। बुकिंग क्लर्क भीतर से ही अधिक पैसे लेकर टिकट सेल कर रहा था। पुलिस खड़ी मुँह ताक रही थी। उसे ब्लैक मार्केटिंग के मुनाफे में एक चौथाई का ध्यान था। उसे हस्तक्षेप करने की क्या आवश्यकता? बाहर दो सज्जन खड़े थे। उनमें से एक ने कहा, "इस तरह टिकट मिलना असंभव है। चलो, एक का दो ही सही। अन्दर चल कर ले लें। पीछे सीट भर जायेगा तो खेल क्या देखेंगे?"

"चलो, यही सही।" दूसरे सज्जन बोले, और दोनों पीछे की ओर से भीतर गये। यशोविजय उन्हें बाहर से देख रहा था। उसने देखा, वे टिकट

का दूना दाम दे रहे है। उससे रहा न गया, वह खिड़की की ओर बढ़ा, बुकिंग-क्लर्क को मना करे, यह पाप की कमाई है, यह टिकने को नहीं। वह धीरे-धीरे भीड़ में घुस कर आगे बढ़ना चाहा। उसका बायाँ हाथ एक काले-कलूटे व्यक्ति की जेब पर पड़ गया। वह पतलून और फ्लाइंग सर्ट पहने था। आँख पर गौगल्स और बायें हाथ में मोटे चेन की कलाई-वाच ! बुकिंग-क्लर्क से कुछ भी कहने के पहले जोरों से हल्ला हुआ, "मारो, मारो, साला पाकिटमार है। बाप रे बाप, यह तो साफ जेब में हाथ डालता है भैया....।" यशोविजय घबड़ा कर पीछे देखना चाहा यह क्या हुआ कि तब तक वह समझ न सका कि उस काले-कलूटे व्यक्ति का चप्पल कब उसके पैरमें था, कब उसके हाथ में आया और फिर यशोविजय के सर पर गिरने लगा।

"हटो छोड़ो ...मुझे क्यो मारते हो....?" उसने अपना हाथ सर पर रखते हुए कहा।

"वजह पूछते हो, चचे।. .. " और फिर एक, दो, तीन। वह क्षत-विक्षत होकर भूमि पर गिर पडा। काले-कलूटे व्यक्ति ने कहा, "यह तो आज दिन भर की कमाई को साफ करना चाहता था। यहाँ पैडिल मारते-मारते साला फेफड़ा खराब हो गया है....।"

यशोविजय ने उसकी बात सुन ली। निश्चय ही वह व्यक्ति रिक्शा वाला है। तो रिक्शे वाले की यह हिमाकत कि वह इतने महान व्यक्तित्व का अपमान करे ? करेगा, अवश्य करेगा। क्योंकि उसके पास पैसे हैं। यशोविजय तो भूख से तड़प रहा है और वह ? वह अभी टिकट-घर की खिड़की पर आने के पहले अपने मित्रों के साथ ग्रेन्ड केफ में छै या सात रुपये का नास्ता करके आया है।

हाँ, तो यह है रिक्शा वाला और यही है हिन्दुस्तान का कलाकार ! सिपाही आ गया, रिक्शे वालों की भीड़ लग गई। यशोविजय चारो ओर से घिर गया। इस बात की पुष्टि में सन्देह की तनिक भी गुंजाइश न रह गई

कि वह यशोविजय पाकिटमार है। सिनेमा हॉल से बाहर ले जाकर सिपाही ने कहा, "पास में जो कुछ है सो दे दो, वरना तीन महीना से कम नहीं जेल भोगोगे।"

"मेरे पास कुछ नही है।"

"और सुबह से जो पाकिट मार रहे हो, सो ?" सिपाही ने थप्पड़ लगा कर कहा।

"मै पाकिट नही मारता। आप विश्वास कीजिये।" बोला यशोविजय। सिपाही ने कहा," चलो तब थाने में। वहीं यह सब कह लेना।" और उसे पकड़ कर कोतवाली की ओर ले चला। पीछे-पीछे कुछ रिक्शे वाले भी थे।

१२

यशोविजय उस दिन रात भर कोतवाली में बन्द रहा। सुबह दारोगा को उस पर दया आई, उसने उसे भविष्य में ऐसा न करने की चेतावनी देकर बाहर कर दिया। उसकी आर्थिक शक्ति के विषय में मै पहले कह चुका हूँ। कोतवाली से निकल कर वह चर्च रोड में उसी हलवाई के यहाँ पहुँचा जिसके यहाँ खाता था। दाढ़ी बढ गई थी, उसे इसकी चिन्ता नहीं। जाते-जाते हलवाई ने पूछा, "रात कहाँ रह गये दोस्त ?"

"ठहर गया था एक जगह।"

"कहाँ, धर्मशाले में ?"

"हाँ, धर्मशाला ही समझो।" बोला यशोविजय और उसने एक फीकी मुस्कान मुस्कुरा दी। हलवाई इतना समझ न सका। उसने कहा, "ठीक है। तुम्हारा तो पता नही चलता कब कहाँ रहते हो। दाढ़ी बढ़ गई है। इसे बनवाओ, और नल पर जाकर स्नान कर आओ फिर खाना भी तो खाओगे।"

यशोविजय ने हलवाई की बात मान ली। उसने दाढ़ी बनवायी, स्नान किया और भोजन जो कुछ रुच सका, कर लिया। दूकान ही में एक टेबुल ड्राम की ओर बिछी थी उसी पर वह रात्रि में सोता था। इस समय

यशोविजय अधिक थकावट महसूस कर रहा था। उसे आराम करने की आवश्यकता थी। दोपहर को ग्राहक आये। कुछ परिचित थे। उन्होंने यशोविजय को देखा, वह टेबुल पर कम्बल ओढ़े पड़ा है। वह आज कुछ विनोदपूर्ण बातें करने में असमर्थ था। आज़ दूकान में मजा न आया। ग्राहक रोज की तरह चाव से न खा सके। हलवाई को यह बात खटकी। उसने आवाज देकर यशोविजय को उठाया। मगर यशोविजय ने कह दिया उसकी तबीयत ठीक नहीं है। इस समय वह किसी शर्त पर उठने में लाचार है। वह सोता रहा, सोता रहा। मिठाई पर भिक्षुकों की आँखें यों ही जमती और उतर जातीं। कुत्ते यों ही लड़ते; अपना मुख लहू-लुहान करते और हलवाई के नौकर के डंडे से मार खाकर भूकते—बिलबिलाते भाग जाते थे। यशोविजय चुपचाप सो रहा था। एकाएक बैंड और डंके की आवाज उसके कानों में गूज उठी। वह चौक गया। उसने पूछा हलावाई से, "काहे का बाजा है उस्ताद ?"

"कार्निवल का है दोस्त।" हलवाई बोला। उसे यशोविजय उस्ताद ही कहा करता था। अवस्था दोनों की बहुत मिलती-जुलती थी। यशोविजय ने पूछा, "कार्निवल ?"

"हाँ, कार्निवल लगा है।"

"चलोगे ?"

"नही ?"

"क्यों ?"

"वहाँ खेल के नाम पर लोगों को जुआ खेलाया जाता है।" हलवाई ने कहा।

"जुआ. . . . ?" अपने सामने की ओर देखते हुए कुछ संशकित होकर यशोविजय ने पूछा।

"हाँ, जुए का तीन-तीन बोर्ड लगा है। एक साथी बतला रहा था।" हलवाई ने उत्तर दिया।

"मगर आज मेरे कहने से चलो उस्ताद ।" उत्तेजित होकर बोला यशोविजय । हलवाई ने कहा, "कहाँ चलोगे ? जुआ खेलने, यह तो बुरी बात है भैया ।"

"जुआ खेलने नही, तमाशा देखने । चलो, आज मेरा मन है उस्ताद । सच बोलो, चलोगे ?" आग्रहपूर्वक यशोविजय ने पूछा । हलवाई का भी मन हो गया । उसने कहा, "अच्छा, चलूँगा । बड़े मजे का सरकस है ।"

आज दिन का एक घंटा यशोविजय को एक वर्ष की भाँति लगने लगा । उसके दिल में एक बार आ गया था कि वह जुआ खेलेगा, मगर पीछे उसे ग्लानि होने लगी । उसने कैसा घृणित कार्य करने के लिये सोच लिया है ? थोड़ी देर बाद उसने संकल्प किया कि वह जुआ न खेलेगा, यह बहुत बुरी बात है । मगर उस्ताद से बातें हो चुकी हैं, कार्निवल देखने तो अवश्य जाना होगा । सो क्या हर्ज है । इतने आदमी जाते है तो क्या सभी जाकर जुआ ही खेलते हैं । वह जाकर कार्निवल में सरकस और और खेल देख लेगा, परन्तु जुआ ? नही, नही, वह जुआ खेल नही सकता बल्कि यदि उस्ताद भी खेलना चाहेंगे तो वह उसे मना करेगा । वह एक प्रकार से यशोविजय का मित्र-सा हो गया है । वह उसे गलत रास्ते पर कभी न जाने देगा । वह न स्वयं खेलेगा न उस्ताद को खेलने देगा ।

इस प्रकार यशोविजय कार्निवल जाने के समय तक 'यशोविजय' के संकल्प-विकल्प का चिट्ठा तैयार करता रहा । समय पर उस्ताद तैयार हो गया । उसने पतली धोती, सैंडो गंजी और मलमल का कुरता पहन लिया । गर्दन में सोने का चेन डाला और बालों में कंघी फेर ली । यशोविजय के पास इतना सामान कहाँ था । उसने अपना पोशाक ही पहन लिया और उस्ताद के साथ चल पड़ा । नौकर और उस्ताद के घर का एक आदमी दूकान सम्हालने के लिये छोड़ दिया गया ।

रिक्शा कार्निवल के गेट पर रुका । असंख्य लोगों की भीड़ थी । लाउड-स्पीकर बज रहा था । गंदे गीतों के रेकार्ड गूंज रहे थे । बीड़ी बनाने

वाले खुश होकर सिर हिला रहे थे। टिकट घर की खिड़की पर भीड़ थी। बिजली बत्ती से ऐसा लग रहा था कि आकाश-लोक के सभी नक्षत्र नीचे उतर आये हैं। लाखों नर-नारी! भिन्न-भिन्न प्रकार का श्रृंगार! लक्ष्मी का खुला नृत्य! यहाँ तैयार था यशोविजय कि अगर उस्ताद ने तनिक भी जुआ खेलने का मंसूबा बाँधा कि वह उसे डाँट देगा। बतलायेगा कि इसी जुआ के कारण पाँचों पाण्डवों ने अपनी धर्म-पत्नी द्रौपदी को दाँव पर लगाया और हार गये। इसी जुआ के कारण लाखों राजा रंक हो गये, हजारो का चरित्र भ्रष्ट हो गया, बड़े-बड़े के महल की ईटें तक बिक गयीं, शान पर धब्बा लगा, रोटी-रोटी के मुहताज हो गये आदि। टिकट लेकर दोनो सरकस देखने चले। सरकस प्रारम्भ हो गया था। हुआ भी अच्छा। फिर नाच का प्रोग्राम था। दूसरी ओर लम्बे कनात में नृत्य–प्रदर्शन भी प्रारम्भ था। वे वहाँ भी गये। नृत्य देख कर उस्ताद कुछ उदास हुए। क्योकि यहाँ पर शास्त्रीय नृत्य हो रहा था। यशोविजय को कुछ पसन्द भी आया, मगर वह न जानें क्यो खिन्न होता चला जा रहा था। पर्दा गिरा दिया गया था और घोषित किया गया था कि अभी कुछ क्षणो में भरत नाट्यम् का कुछ अंश दिखलाया जायेगा। लोग पर्दा उठने की प्रतीक्षा कर रहे थे। यशोविजय अपनी बगल में दो आदमियो का वार्त्तालाप सुन रहा था। वे बातें कर रहे थे कि इस जुए में हाथ की सफाई कुछ नही है। एक अन्दाज से बोर्ड पर काँटा मारना चाहिये। यह चूड़ी नही फेंकनी है जो किसी पर मुश्किल से बैठेगी। अमुक आदमी ने ऐसे अन्दाज से काँटें मारे कि रुपये से जेब भर गयी। उससे रहा न गया। उसने पूछ ही तो दिया, "क्या कहा आपने भाई साहब?" और उस व्यक्ति ने वही बात समझा कर यशोविजय को बतला दी। वह समझ रहा था कि पहला नृत्य भी उस्ताद को नही पसन्द आया है। उसने उसका हाथ धीरे से दबा कर कहा, "उस्ताद, चलो। अब इस नाच में कुछ रखा नही है।"

"हाँ, चलो। मेरा मन भी ऊब रहा है ....।" कहते-कहते उस्ताद उठा। दोनों बाहर निकलने लगे तो भीतर परदा उठने के लिये घंटी बजने

लगी, मगर ये ठहरे नही, उसी तेजी के साथ बाहर निकल आये अंदर से।

घर आने के लिये लौटने ही वाले थे कि उधर दृष्टि पड़ी जिधर मोटर गैस जल रहा था। हजारो लोग चारो ओर से खड़े थे, बीच में जुए का बोर्ड था। यशोविजय ने कहा, "जरा उधर चलो उस्ताद।"

"किधर, जुआ की ओर ?"

"हाँ, जरा देखें। कैसे लोग्र काँटे फेंकते है।"

"चलो, मगर तुरत घर भी लौट चलेंगे।"

"हाँ जी। वहाँ चल कर और हमें करना क्या है।" बोला यशोविजय। जुआ खेलने के अर्थ में वह यहाँ तक भी दृढ़ प्रतिज्ञ था कि न खेलेगा और न उस्ताद को खेलने देगा। वह उस्ताद के साथ चल कर वहाँ खड़ा हो गया। जुए वाला बोल रहा था—"अपना-अपना भाग्य आजमाइये ! लक्कीवाला खेल। दो लगाइये, चार पाइये। काँटे का खेल। माल लगाओ माल पाओ। एक हाथ से....।" दाँव लग रहा था, लोग हार रहे थे, जीत रहे थे। वह उस्ताद के साथ चल कर वहाँ खड़ा हो गया। जुए वाला बोल रहा था अपना-अपना भाग्य आजमाइये। भाग्य का खेल। दो लगाइये, चार पाइये। काँटे का खेल। माल लगाओ माल पाओ। एक हाथ से....।" दाँव लग रहा था, लोग हार रहे थे, जीत रहे थे। नोटों का बण्डल खुल और बँध रहा था। बोर्ड की छाती काँटो से बिंध गई थी। अभी एक आदमी ने दो सौ रुपये लगाये और जीत गया। जुए वाले से उसने उसने चार सौ रुपये वसूल किये। फिर लगाया, फिर जीत गया। इस बार उसे आठ सौ रुपये मिले। यशोविजय का मस्तिष्क ठंढा पड़ा जा रहा था। उसने जुआ खेलाने वाले की ओर एक बार ध्यान से देखा और फिर उत्तेजना भरे स्वर में उस्ताद से बोला, "उस्ताद... जल्दी लाओ।"

"क्या ?" पूछा उस्ताद ने।

"कुछ रुपये।"

"किसलिये ?"

"बस, एक दाँव। मै भी अपना भाग्य आजमा लूं।"

"नहीं, मै रुपये नही दूगा।"

"नही रुपये दे दो उस्ताद, वरना खून हो जावेगा। तुम्हें रुपये देने होंगे।"

"यह तुम क्या कह रहे हो, मैंने दूकान पर क्या कहा था ?"

"छोड़ो उस्ताद ! इस समय जो साथ लाये हो, सो निकालो...।" और कहते-कहते यशोविजय ने उस्ताद की जेब मे हाथ डाल दिया। दस-दस के दस नोट ! उस्ताद से बिना अनुमति लिये उसने जुए वाले से कहा, "ये सौ रुपये हमारा हरे रंग पर।" जुए वालेने रुपये ले लिये और हरे रंग पर रख कर उसके हाथ में तीन कॉटे दे दिये। एक सौ के दॅाव पर तीन काँटें मिलते थे। यशोविजय ने दीवार से लगे बोर्ड पर काँटा मारा—असफल। कॉटा लाल रंग पर जा लगा। उसने दूसरा कॉटा मारा, वह भी असफल। वह आसमानी रंग पर लग गया। यशोविजय ने साहस न तोड़ा। उसने उस्ताद के मुख पर देखा और इस बार तीसरा काँटा मारा तो सीधे हरे रंग पर जा बैठा। उसने खुशी से उस्ताद का कंधा पकड़ कर झकझोर दिया। फिर जो उसने बोर्ड की ओर देखा तो जुआ वाला सामने दो सौ का नोट लिये खड़ा था। दॅाव पर का एक सौ लेकर उसने उस्ताद को दे दिया और बाकी जीता हुआ दो सौ फ़िर दॅाव पर लगाया। न-जाने कैसा नक्षत्र था। इस बार भी वह जीत गया। वह जीतता चला जा रहा था, इसलिये उस्ताद ने कुछ हस्तक्षेप नही किया। अंत में यशोविजय एक हजार रुपये का मालिक बना और जुए वाले के बहुत आग्रह करने पर भी खेलना बन्द कर उस्ताद के साथ कारनेवल से बाहर निकला। उस्ताद ने उसकी पीठ ठोंकी। यशोविजय ने अपनी जेब में हाथ डाला, सौ-सौ के दस नोट ! खुशी का ठिकाना न रहा।

रात को दूकानमें लौट कर यशोविजयने खुशी-खुशी भोजन किया और टेबुल पर जाकर लेट रहा। मगर उसे नींद नहीं आ रही थी। वह सोचता, यह बात अच्छी नहीं हुई और अब इन रुपयों को कैसें—कैसे व्यय करेगा।

(१३)

सुबह होने पर म्युनिसिपैलिटी की मोटरें सड़क पर पानी छिड़क गई। इक्के, मोटर, तॉगे और रिक्शे का चलना प्रारम्भ हो गया, उस्ताद की दूकान पर जलपान करने ग्राहक आने लगे, नौकर गरम-गरम कचौड़ियाँ छानने लगे, मगर यशोविजय ने अभी अपनी नींद नहीं तोड़ी। वह अब तक सोता रहा था। बीच-बीच में कभी करवटें बदल लेता, बस। उस्ताद देर तक उसके स्वयं उठ जाने की प्रतीक्षा कर रहा था, जब वह नहीं उठा तो उसने जाकर यशोविजय के बदन को हिलाया। कहा, 'अजी अब आठ बजने को है, फिर भी सोते रहोगे। उठो। ऐसे कब तक पड़े रहोगे ?"

उस्ताद के इस प्रकार कहने पर धीरे-धीरे वीर सैनिक की भाँति आँखें मरमराते हुए यशोविजय उठा। उसे अपने बदन का वजन भारी मालूम हो रहा था। सिर दर्द से फटा जा रहा था। बुखार जोरों से हो आया था। उसने कहा, "उस्ताद, मेरी तबीयत खराब हो गई है।"

"तबीयत खराब हो गई है, क्या हुआ है तुझे ?" उस्ताद ने आश्चर्यवश पूछा।

"देखो न . . . .।" कहते हुए यशोविजय ने उस्ताद को संकेत किया कि वह उसका सर और कलाई स्पर्श करे। उस्ताद ने जब ऐसा ही किया, तो चेहरा उदास हो गया, भौंहो में बल पड़ गया। उसने कहा, "बिजनेस का काम खतम हुआ या नहीं ? अगर न भी हुआ हो तो अपने घर आज ही लौट जाओ। परदेश का मामला है। यहाँ बीमार होकर दूकान में कब तक पड़े रहोगे। हम सभी तो दूकान में फँसे रहते हैं, एक आदमी देख-रेख वाला भी तो चाहिये। काम कुछ हर्ज भी हो तो कोई बात नहीं। भगवान ने

तुम्हें यों ही एक हजार दे दिया है। क्यों भैया ?" यशोविजय ने एक लम्बी साँस छोड़ कर कहा, "हाँ, आज शाम की बस से चला जाऊँगा उस्ताद !"

इसके बाद कोई विशेष बातचीत नहीं हुई। दिन के तीन बजे लगभग यशोविजय का बुखार उतर आया। उसने तब मुख धोया, स्नान किया और थोड़ा हल्का भोजन भी। करीब पाँच बजे शाम को अपना अटैची लेकर वह मोटर सटैन्ड पर आया। साथ में उस्ताद भी आया था। मोटर में अटैची रख कर दोनों बाहर खड़े-खड़े बातें करते रहे। कनडक्टर मुसाफिरों को हवा की भाँति ललकार रहा था।

"सब किस्मत की बात है भैया।"

"हाँ, उस्ताद !"

"हमने दूकान पर फैसला किया था, जुआ नही खेलेंगे और जाकर खेल लिये।"

"मत पूछो। मैं तो जुआ खेलने के दस मिंट पहले तक तैयार था कि जुआ नहीं खेलूंगा और न तुम्हें खेलने दूगा, मगर न जानें यह प्रेरणा कैसे जग गई।" यशोविजय बोला।

"जाने दो। भगवान् ने अच्छा ही किया, हारे नही।"

"ईश्वर देख रहा था शायद....।" बोल कर यशोविजय ने ठहाके के साथ उस्ताद का हाथ पकड़ लिया और हँस पड़ा। ऐसी खुली-हँसी उस्ताद ने उसके अधरों पर कभी नही देखी थी। साथ में वह भी हँस दिया। अब बस खुलने का समय हो गया था। कंडक्टर ने कहा, "आइये चढ़िये। अब गाड़ी खुलेगी।"

"अब चढ़ जाओ भैया, तुम्हारी गाड़ी खुल रही है।" उस्ताद ने कहा और मोटर में प्रवेश करते-करते यशोविजय ने उस्ताद का दोनों हाथ कसकर अपने हाथों से दबा दिया। उस्ताद को लगा, जाते-जाते यशोविजय ने हुत-कुछ दे दिया।

छोटे-छोटे जंगलों और पहाड़ी मार्ग को पार करती हुई बस पटना के पश्चिम दरवाजे तक आ गई। यशोविजय ने यही तक का टिकट लिया था। कंडक्टर ने जब उसे उतरने के लिये कहा तो वह बोला, "मुझे अदालत ले चलो। मेरी तबीयत अच्छी नही ? वहाँ किसी मित्र से मुलाकात हो गई तो सहायता भी करेगा। टिकट जो अधिक लगे वह मुझे दे दो।,, कंडक्टर को कोई आपत्ति नही होनी चाहिये थी और न हुई। उसने ऐसा ही किया।

बस, पटना अदालत के मोटर-पड़ाव में आकर रुकी। अपनी अटैची लेकर यशोविजय ज्योंही उतरा कि उसे उल्टी होने लगी। वह काफी शिथिलता अनुभव करने लगा। मोड़ पर ड्यूटी वाले सिपाही को सूचना दी गई। दो एक भले लोगो ने अस्पताल में टेलीफोन किया और एेम्बुलेन्स कार आ गई। यशोविजय उसी कार में अचेतावस्था में अस्पताल पहुँचाया गया। उसे हैजा हो गया है, इसकी पुष्टि करना मुश्किल था। उसके सिर में केवल दर्द था, और साधारण उल्टी हो गई थी। वह अधिक नही बोल सकता था। वह बहुत धीमे स्वर में बोल लेता था। उसकी वाणी में सभ्यता और मनुष्यत्व की झाँकी थी । सभी जगह भले और बुरे लोग होते हैं नवयुवक डाक्टर के इलाज में था वह। उसने उसे अच्छी से अच्छी दवा दी और एक अनुभवी नर्स के ऊपर उसकी सेवा–सुश्रुषा का भार सौप दिया। नर्स उस पर ध्यान काफी रखने लगी, इसमें सन्देह नही।

दूसरे दिन यशोविजय की शारीरिक दशा तो अच्छी दीख पड़ी, किंतु बौद्धिक दशा लगी जैसे वह अब क्षयशील हो रही है। सुबह नर्स ने आकर थर्मामीटर लगाया, बुखार देख कर चली गई। पीछे दवा देने आई। उसे देख कर शोविजय उठ बैठा। नर्स ने आकर कहा, "सोइये न। मैं मेडिसिन पिला देती हूँ।"

"मगर देखिये न एक बात है।" बिना लेटे यशोविजय ने कहा।

"क्या बात है, कहिये।" बोली नर्स।

"ऐसे नहीं कहूँगा, आप जरा यहाँ बैठ जाइये।" यशोविजय ने इस प्रकार कहा कि नर्स में उसकी बात सुन लेने की एक स्वाभाविक उत्सुकता जागृत हो उठी। मगर उसने कहा, "कहिये न, मै सुन लेती हूँ।"

"यह बहुत बुरी बात है। देखिये सिस्टर, आप नहीं जानतीं। यह बिल्कुल मनोवैज्ञानिक सत्य है कि रोगी को यदि छोटी-छोटी बातों में झिझकने के लिये मजबूर किया जाये तो उसका रोग उत्तरोत्तर बढ़ेगा ही घटेगा नही।" यशोविजय ने कहा। नर्स कुछ समझदार थी। वह बगल की टेबुल पर बैठ गई। बोली, "हाँ, कहिये।"

"मगर आप मेरे कहने का अर्थ कुछ और तो नही लगा लेंगी ?" यशोविजय ने भावुक की तरह पूछा। वह बोली, "कहिये न। मै आपको रोक कहाँ रही हूँ।"

"तो देखिये। आज एकाएक मुझे अपनी लिटिल की याद हो आयी है....।"

"लिटिल ?" नर्स ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, उसे आप नही जानती। लिटिल मेरी धर्मपत्नी है, जिसे मैं आधी रात में जब व्योम मार्ग से पपीहा "पी कहाँ, की टेर लगाता हुआ चला जा रहा था, मै उसकी बगल से उसे नीद्रावस्था में छोड़ कर भाग आया। क्या कहूँ आपसे, वह मुझे बहुत चाहती है। वह आजकल की पत्नियों की तरह नही है। कुल की लाज रखने वाली है। उसने कभी मुझसे कोई चीज ले आने की फरमाइश नही की। मै दिन भर कमरे में बन्द कार्टून बनाता रहता और वह मुझे पानी पिलाने, पंखा झलने और मेरे आस-पास शान्ति बनाये रखने में तत्पर रहती थी। सचमुच वह बड़ी अच्छी है, सिस्टर .... बोलते-बोलते यशोविजय पलंग से ऐसे उतरने लगा जैसे वह सिस्टर को अपने बाहुपाश में आवद्ध कर लेगा। सिस्टर इसका मानें जानें क्या समझीं। वह वांयु-वेग में टेबुल से उठ कर तनिक दूर खड़ी हो गई। यशोविजय ने कहा, "बैठिये, आप ऐसे क्यों.... ?"

"आप कहिये न, क्या चाहते हैं।" नर्स बोली, मगर बैठी नहीं।

"नही, पहले आप बैठिये।" यशोविजय ने आग्रह किया। नर्स इस बार बहुत संकोच के साथ बैठी और बोली, "मगर देखिये आप अपने स्थान से उठिये नहीं।"

"नहीं उठूंगा। हाँ, तो सुनिये। आधुनिक युग में वैसी पत्नी मिलना असम्भव है। तो मै आपसे सच्ची बात यह कहूँ कि उसकी याद इसलिये हो आती है कि...।" रुक गया यशोविजय।

"इसलिये कि....?" कह कर नर्स ने यशोविजय से लोचन इस प्रकार चार किये जैसे उसके हृदय में उसके प्रति एक महान सहानुभूति छिपी हुई है। राख के नीचे भी चिनगारी होती है। यशोविजय ने कहा, "इसलिये कि उसकी ऑंखें ठीक आपकी ऑंखों से मिलती हैं। आपके चलने और देखने का ढंग भी उसी तरह है। आप मुझे दवा न पिला कर मेरे पास थोड़ी देर बैठिये, बस मै यही चाहता हूँ।" कह कर रुका यशोविजय। नर्स की भाव-भंगिमा एक ही क्षण में बदल गयी। उसने तीखे स्वर में कहा, "आप यह सब फिजूल-फिजूल बातें क्या बक रहे हैं। आपको मालूम होना चाहिये, आप अस्पताल में हैं, किसी की महफिल में नही।"

"क्यों, आप रंज हो गई मुझसे सिस्टर?"

"क्यो नहीं। क्या आप मुझे अपनी लिटिल ही समझते है। खबरदार, यह सब ठीक नही। मै डाक्टर को सूचना दे दूगी तो अस्पताल से बुरी तरह निकाले जाइयेगा।" नर्स ने कहा। यशोविजय बोला, "देखिये न सिस्टर! इन्सान अपनी कमजोरियो को छिपाना तो अवश्य चाहता है, मगर कमजोरी, कमजोरी ही है। मजबूती भी अलग से पैदा हो जावे, तो कोई अत्युक्ति नहीं, मगर कमजोरी का अपना स्थान है इसमें कोई शक नही। आपने मुझे आवारा समझ लिया? जरा सा उतरने लगा तो टेबुल से उतर कर भागने लगी। तुम अपने मन के अंदर बैठे हुए चोर को पकड़ो मुझे घृणित दृष्टि से न देखो। छिः सिस्टर....।"

"यू इडीयट शट् अप !"

"यू इडीयट् ।"

क्रोधावेश में यशोविजय काँप उठा, उसके होठ फरफरा उठे। नर्स भी गुस्से से तमतमा रही थी। यशोविजय ने कहा, "तुम मेरी पत्नी क्या हो सकती हो। तुम्हारे लिये लिटिल होना असम्भव है। वह भारतीय संस्कृति में पली हुई आदर्श नारी है, बिल्कुल देवी ! तुम्हारी तरह दिन भर में पाँच बार वह हेजलीन नही लगाती। जरा-सी बात इन्हें आत्मीय समझ कर कह दी तो लगी सतीत्व का प्रदर्शन करने। अरे, शर्म केवल नेत्र में ही नही, मन में भी होती है। और डाक्टर मेरा क्या करेगा, जाओ डाक्टर को कहो। नर्स, उस्ताद, जुआ....हटो जाओ....यदि मुझसे इतनी घृणा ही थी तो क्यों तूने मेरी सेवा की....समझता हूँ, इसलिये कि तुम्हें पैसे मिलते है, भावना नही रखती तुमलोग। सेवा की भावना नही है, सेवा बेचने की भावना है....।"

"क्या बकते हो, चुप रहो।"

"तुम चुप रहो, अन्यथा मै गोली मार दूगा....।" कह कर यशोविजय ने अपने हाथों के सहारे ऐसा पोज बनाया कि उसके हाथ में रिवाल्वर है और वह नर्स को मारना चाहता है। नर्स ने आगे कुछ न सुना। वह दौड़ती हुई डाक्टर से मिलने चली। उसके ऊँची एड़ी के सैन्डल के स्वर से पूरा वार्ड गूज रहा था। वह क्रोध में चली जा रही थी। इधर यशोविजय खाट से उतरा, सिरहाने की आलमारी में उसकी अटैची थी। उसने उसे निकाला और जल्दी-जल्दी बाहर निकलने लगा। वह धीरे-धीरे पीछे भी देख लेता था। एक बार उसने देखा कि डाक्टर के साथ वही नर्स आ रही है। सामने ही लिफ्ट पड़ रहा था। वह उस पर चढ़ा और बटन दबा कर क्षण भर में नीचे उतर गया।

(१४)

"ये ऑल इण्डिया रेडियो है....।"

पान की दूकान पर खड़ा यशोविजय सिगरेट सुलगा रहा था। ऑल इंडिया रेडियो से हिंदी में समाचार प्रारम्भ हुआ तो उसने जाना सवा नौ बज गये। पान की दूकान पर रेडियो बज रहा था। अस्पताल से निकले उसे आज सात-आठ रोज हो गये। शहर के फ्रेजर रोड में उसने एक किराये का कमरा ले रखा था। फ्रेजर रोड के ठीक मोड़ पर ऑल इंडिया रेडियो, पटना केन्द्र है। इसी रोड में इंडियन नेशन और आर्यावर्त्त का संयुक्त कार्यालय है। इस रोड के अगल-बगल बड़े-बड़े मकान और बड़ी-बड़ी दूकानें हैं। कहते हैं, भारत के स्वतन्त्र होने के पूर्व इस रोड में अंग्रेजों की भी काफी दूकानें थी, किंतु अब केवल एक दूकान बच गई है। उसी फ्रेजर रोड से कुछ पूरब चल कर उत्तर आने के बाद पटना का सबसे बड़ा मैदान "लॉन" है। मकान यहाँ इतने घने हैं कि दिन भर उनमे पड़े-पड़े तबीयत ऊब जाती है। नगर के अधिकाश लोग इस मैदान मे किरण डूबते ही पहुँच जाते है और बैठकर आनंद का अनुभव करते हैं। फुटबाल भी उसी मैदान में होता है कप अथवा सिल्ड-मैच के दिन फिल्ड के चारों ओर लाखों नर-नारी की भीड़ देखने को मिलती है। लोग लॉन के उत्तर तरफ कलक्टरी और उसी से सट कर गंगा की विशाल धारा है। मन्दिरें है, मठ हैं, साधु-सन्यासी रोज आते जाते रहते हैं। गंगा के किनारे घाट पर बैठ कर भी लोग विश्राम का अनुभव करते हैं। कलक्टरी घाट पर खड़ा होने से उस पार का पहलेजा घाट रात्रि में बड़ा ही मनोहर दीख पड़ता है। अवध तिरहुत रेलवे की लाल-लाल गाड़ियाँ, छोटे-छोटे मालगाड़ी के डब्बे और ढुनमुन-सी इंजिनें बरबस मन को आकर्षित कर लेती है। इसी पहलेजा घाट से छोटी लाइन की गाड़ी पर सवार होकर लोग उत्तर विहार में प्रवेश करते है। छपरा, वैशाली, दरभंगा, आदि स्थानों पर जाने के लिये इस घाट पर अवश्य आना

पड़ता है। कलक्टरी घाट पर अनेकों नौकायें भी लगी रहती हैं। मेडिकल और इंजिनीयरिंग कॉलेज ठीक गंगा तट पर ही स्थित है। अवकाश के क्षणों में यहाँ के छात्र नौकाओं पर सवार होकर बीच रेत में आते हैं, वोटिंग करते हैं तरह-तरह के खेल खेलते, और पिकनिक आदि कर अपना मन-बहलाव करते हैं।

अब हमें कहना यह है कि यशोविजय पटना के अनेक स्थानों को देख चुका था। हम ऊपर जिनका वर्णन कर चुके हैं, उसने उधर भी टहलने की कोशिश की है। अस्पताल से निकल कर दूसरे दिन जब उसने मकान भाड़े का लिया तो वह उतना चिन्तित नही था जितना दो-तीन रोज से रहने लगा है। उसका कारण वह जानता है। उसे यह सब बड़ा बुरा लगता है, मगर फिर भी वह करता जा रहा है यही ठीक नही। उसे स्वयं से द्वेष होता है, लाज लगती है और अपने को अवहेलना की दृष्टि से देखता भी है, मगर उसमें एक विचित्र विचार का ज्वार आता है जिससे वह सब कुछ धूल कर एक ओर हो जाता है और तब वह कहता है, "मैं जो कर रहा हूँ सो उचित कर रहा हूँ। इसमें आगे-पीछे सोचने की कोई आवश्यकता नही।" मगर आखिर यशोविजय केवल एक मनुष्य-मात्र ही नही, मनुष्य का एक विशिष्ट रूप है। वह बहुत-कुछ सोचता है––थोड़ा बहुत नही।

हाँ तो एकाएक सवा नौ बजने का ध्यान आने पर उसने पानवाले से कैवेन्डर का चार पैकेट लिया और डेरे की ओर चल दिया। सड़क के किनारे बिजली के वल्व जल रहे थे। इसके पहले वह लॉन और गंगा-तट से घूम आया था। इस कारण उसके दिमाग को कुछ शान्ति प्राप्त हो रही थी।

यह विल्डिंग अभी नयी-नयी बनी थी। कोठे पर केवल यशोविजय रहता था। समूचा मकान वैसे खाली। जब यशोविजय विल्डिंग के द्वार पर पहुँचा तो चारों ओर कुत्ते जोर-जोर से भूंक रहे थे। उसे चोर समझ कुत्तों ने चारो ओर से घेर लिया, लगा जैसे वे उसे बिना काटे दम नहीं लेंगे। मगर यशोविजय ने उन्हें धीरे से पुचकार दिया और वे दुम हिलाते हुए

बगल की गली में घुस गये। उनके भूकने का स्वर दूर से सुनाई देने लगा। नीचे की सीढ़ियों को पार करता हुआ वह ऊपर पहुँचा। इतना बड़ा मकान, ऊपर अकेले रहना आसान बात नही। एकांत में ऐसा ज्ञात होता है जैसे चारों ओर भूत-प्रेत टहल रहे हे। शहर का मामला है, वरना यदि देहात में ऐसा सूना मकान होता तो इधर दिन को भी लोग नही आते। खैर, तो अपने बन्द कमरे का ताला खोल कर यशोविजय ने भीतर प्रवेश किया और लालटेन जलाया। अभी मकान में बिजली-बत्ती नही लग पायी थी। पूरे कमरे में प्रकाश फैल गया। जमीन पर एक दरी बिछी थी। एक तकिया भी। बगल में दीवार से सटा कर अटैची रखी थी। उसने कमीज खोल दी और दरी पर लेट रहा। सिगरेट का एक डब्बा कमीज से बाहर निकाल कर सिरहाने रख लिया था। तकिया पर सिर रखते ही उसकी आँखें दीवार से जा लगी। वह सोच रहा था, अपना कर्तृत्व—अपना कर्म-धर्म। आखिर इसका परिणाम क्या होगा। इस मकान में रहने के लिये इधर कई किराये-दार आये। उनसे इसने बतलाया है कि वही इस मकान का सब कुछ है। उसने उन सबों को आश्वासन दिलाया है कि मकान उन्हें ही किराया पर दे देगा और प्रत्येक से उसने एडवान्स रुपये भी ले लिये है। अपने हजार रुपये में से उसने कम ही खर्च किया है, बाकी इधर का खर्चा उन्ही एडवान्स के रुपयों से हो रहा है। यह सब क्या बात है? एकाएक वह उठ पड़ा और डिब्बा से सिगरेट निकाल कर सुलगाया। रात को उसे नीद नही आ रही थी। बॉकीपुर जेल के द्वार पर के संतरी ने जब बारह का घंटा ठोंका तो सिगरेट का पहला डब्बा खाली हो चुका था।

अब उसने कमीज की जेब से दूसरा डब्बा निकाला। पीने लगा, और बैठा रहा। उसकी पलकें मुश्किल से झुक पाती थी। अन्त में कुछ ऐसा लगा कि उसने एक निर्णय कर लिया है। उसने एक बार सन्तोष की सांस ली। और तब शायद उसे नीद आने लगी, वह सो गया।

दूसरे दिन यशोविजय एक्जीवीशन रोड, न्यू एरिया, कदमकुआँ, नयाटोला, गोविन्द मित्र रोड आदि स्थानों में टहल-टहल कर किराये के

मकान खोज रहा था। अन्त में न्यू एरिया में उसे फिर एक नया मकान ही मिला। उसने एक कमरा किराये पर ले लिया। भाग्यवश इसमें भी यह अकेला किरायादार रहा। उसने पहले मकान को बिना मकान-मालिक को सूचित किये ही चुपके-से छोड़ दिया और ऐडवान्स के रुपये लिये चुपचाप न्यू एरिया वाले मकान में चला आया। उस मकान को छोड़ते समय उसके मन में एक बार यह विचार अवश्य उदय हो आया था कि वह ऐडवान्स के रुपये मकान-मालिक को वापस कर आये, मगर पीछे उसके कदम रुक गये, उसने सोचा जो हो गया सो हो गया। ऐसा आगे न होगा। बेइमान होना ठीक नही। इससे आदमी का विश्वास उठ जाता है। किंतु क्या ऐसा हो पाया। न्यू एरिया वाले मकान को ही नही, बल्कि शहर के अनेक मुहल्ले में उसने किराये पर डेरा लिया और इसी गल्ती के कारण उसे डेरा बदलते रहना पड़ा। वह स्थिर होकर एक जगह रह नही पाता था। कही नौकरी तो करता नही, मगर कोई जब देखे तब व्यस्त! शहर के सभी चित्रकारों से परिचय, मगर कोई जानता नही कि वह उच्चकोटि का सुन्दर चित्रकार एवं कार्टूनिस्ट है। वह किसी भी पार्टी का नाम न लेता था, मगर केवल उसकी बातचीत से उससे मिलने-जुलने वालों ने उसे "कम्युनिस्ट" करार दिया था। मगर वह उनका प्रतिकार कभी उग्र ढंग से नही करता। मकान के रुपये ऐडवान्स ले लेने की गल्ती जान कर होते हुए भी उसे कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे वह अनजान में हो जाती है। होटल में भोजन करते समय यदि उसे यह बात याद आ जाती तो वह ग्लानि से भर जाता और थाल छोड़ कर उठ जाता था

इस बार उसने महेन्द्रू महल्ले में एक डेरा किराये पर लिया था। बिल्कुल रानीघाट के पास, यह मकान जिसका था वे स्वयं कियायेदार से बातें न कर पाते थे, उन्हें और भी धन्धा था। उन्होंने यहाँ अपना एक कारिन्दा नियुक्त कर दिया था। इस डेरे की बातचीत यशोविजय ने कारिन्दे से ही की थी। वह इसके मालिक से पूर्णतया अपरिचित था। उसे यह बात मालूम थी कि लिटिल के भाई यहीं रहते

और लॉ पढ़ते हैं। लॉ कॉलेज के सामने ही लॉ होस्टल है। केवल बीच में सड़क पड़ती है। उसका डेरा यहाँ से काफी समीप ही पड़ता था। वह टहलने निकलता तो चारों ओर आँखें फाड़ कर चलता कहीं उनसे भेंट न हो जाये। मगर एकबार उसे याद हो आया, वे होस्टल में नहीं किसी रिश्तेदार के यहाँ रहते है। अब वह निर्भीक हो गया और लॉ क्लास के समय के बाद होस्टल की ओर टहलना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन उसे एक एम० ए० के छात्र से भेंट हो गई। छात्र महोदय किसी लॉ स्टूडेंट के साथ होस्टल में रहते थे। मगर अब उन्हें अपने साथ रखने में कुछ एतराज था। यशोविजय ने समझा, यह फिर भारी गलती हो रही है, मगर उसने कहा, "आप चलिये, हमारे मकान में रहिये।" और उसने छात्र को प्रभावित कर दिया कि वह उन्हें अपने मकान में रहने पर हर तरह की सुविधा प्रदान करेगा। अस्तु।

दूसरे दिन वे छात्र महोदय अपने सरो-सामान के साथ उस मकान में चले आये। मकान मालिक का कारिन्दा किसी कार्यवश छुट्टी लेकर अपने घर देहात चला गया था। दो कमरे का किराया चालीस रुपया था। शाम का वक्त था। यशोविजय ने ऐडवान्स का रसीद लिखने के लिये कलम उठायी, चालीस रुपये के नोट और छात्र दोनों सामने थे। एकाएक सीढ़ी पर किसी की पद-चाप सुनाई पड़ी तो सिर उठा कर उसने देखा वे ही डाक्टर महोदय आ रहे हैं, जिन्होंने जेनरल हॉस्पिटल में उसका एलाज किया था। उसने डाक्टर के मुख पर आश्चर्य का भाव देखा।

"अहा, आप यहाँ कैसे ?" यशोविजय ने डाक्टर से पूछा।

"आप न कहिये, यहाँ कैसे ?" डाक्टर ने समीप आकर पूछा। एम० ए० का छात्र सशंकित हो उठा।

"अरे भाई, मेरा क्या पूछते है। दिल्लगी करने की आपकी पुरानी आदत है।" बोला यशोविजय।

"मैं दिल्लगी करता हूँ आपसे ?" डाक्टर जरा गंभीर हुआ।

"हाँ, दिल्लगी नहीं तो और क्या। आप जानते हैं, मैं अपने मकान म बैठा हूँ, फिर पूछते है, आप यहाँ कैसे ? भला यह दिल्लगी नहीं तो और क्या है ? खासी दिल्लगी, गहरा मजाक !" यशोविजय ने निडर होकर कहा। अस्पताल के व्यवहार से डाक्टर पहले ही क्षुब्ध हो चुका था। यशोविजय के इस व्यवहार ने उसे और भी परेशानी में डाल दिया। डाक्टर की आँखें क्रोध से लाल हो उठीं। उसने पास में बैठे हुए छात्र से पूछा, "आप किरायेदार हैं क्या ? कैसे-कैसे इनसे बातें हुई है ?"

यशोविजय और उसके बीच जो-जो बातें हुई थीं, छात्र ने सब कुछ बतला दिया। फिर अंत में यह बात ज्ञात हो गई कि यह मकान उस डाक्टर का ही है। यशोविजय शर्म से वहीं गड़ गया। आस-पास के लोग आकर खड़े हो गये। जिसके मन में जो आता उसे कहता, डाँटता और फटकारता। डाक्टर ने पुलिस में सूचना नहीं दी, मगर उसे बुरी तरह घर से निकाला। निकलते समय दस आदमी के सामने उसे माफी भी माँगनी पड़ी।

(१५)

अभिरामा की मनोदशा में कोई परिवर्त्तन न हुआ। वही गति, वही आवेश, वही भावुकता। कोई यह कल्पना नही कर सकता था कि कब क्या कह देगी, कब क्या पूछ बैठेगी। पार्क की घटना के बाद लगभग चालीस दिन यों ही बीत गये, मगर उसने अनिलदेव को कभी बुलाया नही। परन्तु अनिलदेव के हृदय में स्नेह का भाव था, अभिरामा के लिये, अनिलदेव के मन में श्रद्धा थी अपने अभिन्न मित्र यशोविजय के लिये, अनिलदेव के दिल में प्रेम था उनके वीरान होते हुए मकान के लिये। जब इतने दिन बीत गये, उनके यहाँ से कोई सूचना न मिली तो उन्हें एक बार ऐसा ख्याल हो आया कि वे पीहर चली गईं। मगर इतने ही से संतोष हो गया, ऐसी बात नहीं। दफ्तर से लौट कर आये तो वनजा से चर्चा की। मीनाक्षी भी बैठी थी। उसने कहा, "पति की अकस्मात् जुदाई ने बेचारी का दिमाग खराब कर दिया है।"

"दिमाग नहीं खराब हुआ है भाई ! बड़ी समझदार है। क्या करोगी, बीमार होने पर डाक्टर भी अपना इलाज स्वयं नही कर पाता। वैसे तो तुमने बहस भी की है, क्या कुछ अनुचित थोड़े बोलती है ?" वनजा ने मीनाक्षी से कहा। अनिलदेव बोले, "चाहता हूँ, तनिक चल कर पता लगा आऊँ कैसी है।"

"हाँ, जाओ न। देख आओ। आ सकें तो लेते आना। कहो तो मैं भी चलूं।" वनजा बोली।

"तुम....।" रुके अनिलदेव।

"क्या कहा, तुम ?"

"पूछ रहा हूँ, तुम चलोगी वनजा ? तुम जा सको तो अकेली भी जा सकती हो।" अनिलदेव ने सहर्ष कहा। वनजा अभिरामा के यहाँ अकेली जाने को तैयार हो गई। यशोविजय के मकान के समीप ही एक सिनेमा हॉल पड़ता था। एक दिन सिनेमा जाते समय बग्घी पर से अनिलदेव ने यशोविजय का घर दिखला दिया था। अनिलदेव डेरे पर ही रह गये। कपड़े बदल कर वनजा अभिरामा के यहाँ चली।

वनजा जब अभिरामा के द्वार पर पहुँची तो बिजली बत्ती जल चुकी थी। वह चाहती तो सीधी अंदर चली जाती, मगर प्रथम बार वह आयी थी उसके यहाँ, इसलिये उसे द्वार पर एक क्षण रुक जाना पड़ा। इसी बीच भीतर से एक नवयुवक जो सूटेड-बूटेड अप-टू-डेट था, निकला। उसकी पीठ के पीछे से यह भी आवाज सुनायी पड़ी, "सवेरे आ जाना, मै उतनी रात तक जग नहीं पाती।" पहले वनजा ने युवक को नीचे से ऊपर तक देखा, पीछे पूछा, "वे हैं तो अंदर ?"

"आप किनसे मिलेंगी ?" युवक ने पूछा।

"मिसेज यशोविजय को चाहती थी मैं।"

"एक मिट....।" कहते हुए वह युवक अंदर गया। वही फिर. पतली आवाज धीरे से सुनायी पड़ी, "क्या है, लौट क्यों आये ?" युवक ने

तब शायद कुछ कहा। वनजा सुन न सकी। फिर तुरन्त ही युवक ने आकर वनजा से कहा, "क्षमा कीजियेगा, वे इस समय नहीं हैं।" और इस प्रकार खड़ा हो गया जैसे जब तक वनजा लौट नही जाती तब तक वह वही खड़ा रहेगा। यदि वह अंदर जाना चाहेगी तो वह हाथ पकड़ कर रोक लेगा। वनजा को एक बार ऐसा अनुभव हुआ कि अंदर से आने वाले मीठे स्वर को वह पूर्णरूपेण पहचानती है। मगर उसने ऐसा विश्वास न कर लिया कि वह अभिरामा हो सकती है। उसने युवक से उसके उत्तर को प्रश्न में दुहराया, "नही है ?"

"जी नही।" बोला युवक और पूर्ववत् खड़ा रहा।

"अच्छा, मै चलती हूँ। यह स्लीप उन्हें आप दे देंगे....।" कह कर वनजा ने फाउन्टेन पेन निकाला और कागज के छोटे-से टुकड़े पर अंग्रेजी में कुछ लिख दिया था। जिसका भावार्थ था :—

"बहन जी, बहुत दिन हो गये। आपका कुशल-समाचार हमें न मिला। वे आपकी बड़ी चर्चा करते है। मै आपसे मिलने और लिवाने आयी थी। कष्ट न हो तो अपने समाचार से हमें अवगत करायेंगी।"—वनजा।

इसके बाद वनजा ने वह स्लीप युवक के हाथ में पकड़ा दिया और स्वयं वापस हो आयी। घर लौट कर उसने अनिलदेव को बतला दिया कि उनसे भेंट न हो सकी। वे नहीं थीं। अनिलदेव ने पूछा, "नही थीं वे ?"

"नही।"

"तुम्हें किसने कहा, वे नहीं है ?"

"एक युवक अंदर से आ रहा था, उससे मालूम हुआ।"

"वह युवक कौन था ?"

"यह मैंने नहीं पूछा ?"

"वे कहाँ गई हैं तुमने पूछा नहीं ?" पूछा अनिलदेव ने। उत्तर में वनजा ने कहा, "मैंने यह जाना अड़ोस-पड़ोस में गई होंगी। इस पर अधिक पूछना मैंने आवश्यक न समझा।"

"पीहर जाने को कहा करती थीं, चली तो नहीं गईं . . . .।" अनिलदेव की यह बात सन्देहात्मक थी। इस पर वनजा ने कहा, "युवक के स्वर में ऐसा आभास नहीं था कि वे यहाँ से कहीं बाहर चली गई हैं। और यदि ऐसी बात होती तो वह मेरा लिखा स्लीप ही क्यों लेता।" और इसके बाद वनजा ने उन्हें बतला दिया कि उसने स्लीप पर उनके नाम क्या लिख कर दिया था। अनिलदेव दो मिंट शात रहे। वनजा वहाँ से दूसरे कमरे में चली गई। बीच में एक दम शान्ति छा गई। इसी क्षण अनिलदेव को नीचे की सीढ़ी से ऊपर चढने का स्वर सुनायी पडा। स्वर काफी धीमा था। उनके कान अभी पूरा सतर्क भी न हो पाये थे कि देखा सामने से अभिरामा चली आ रही है। उनसे न रहा गया। आश्चर्यवश बोल उठे, "अरे, आप अभी कैसे ? वे अभी-अभी आपसे मिलने गई थी, न मिलने पर निराश होकर. . . .।"

"चुप. . . .।" अपने अधर पर ऊँगली रख कर अभिरामा ने उनके बोलने की गति बंद कर दी और समीप आकर धीरे से पूछा, "आपकी धर्म-पत्नी कहाँ है ?"

"बगल के कमरे में।" बोले अनिलदेव, धीमे स्वर में।

"आप भगवान के लिये इस समय चुपचाप मेरे साथ बाहर चलिये। कुछ आवश्यक बातें करनी है।"

"क्यों, बातें तो यहाँ भी हो सकती है।"

"आप चलिये भी तो। बहस न कीजिये।"

"मैं बहस कहाँ कर रहा हूँ।" अपने जानते यह कह कर अनिलदेव ने नम्रता प्रकट की, मगर बदले में अभिरामा ने झिझक के साथ कहा, "बहस तो नहीं करते, मगर उससे खतरनाक काम करते हैं। मै कहती हूँ बाहर चलिये और आप यों ही देर किये जा रहे है। मै उनके सामने होना नहीं चाहती। बीच में अगर मीनाक्षी आ गई तो बेकार का वादविवाद छिड़

जावेगा। उसे गंदे साहित्य पढ़ने की चाट पड़ गई है। मुझसे बिना बोले रहा नहीं जायेगा।"

"बस अभी ही चल चलूं?" कुर्सी से उठकर अनिलदेव ने पूछा। अभिरामा और भी बेचैन हो गई। उसने कहा, "आपको नहीं चलने का मन है तो साफ क्यों नही कह देते। मुझे यहाँ रोक कर जलील करने की इच्छा है क्या? जलील ही करना चाहते हैं तो कहिये, मैं भागूंगी नहीं। अच्छी तरह जलील हो लूंगी—शौक से।"

अभिरामा के इतना कहने पर अनिलदेव सीधे उसके पीछे-पीछे मकान से निकल कर बाहर सड़क पर आ गये। उन्होंने देखा, अभिरामा काफी उत्तेजित दीख पड़ती है। उनके बाल विखरे और अस्तव्यस्त हैं। उत्तेजना के साथ-साथ एक विचित्र तरह का गाम्भीर्य भी चेहरे पर है। उन्होंने पूछा, "आज इस प्रकार व्यस्त क्यों....।" बीच ही में बात काट कर अभिरामा ने कहा, "कुछ नही, पहले पार्क में चल चलिये।" अनिलदेव ने कोई आपत्ति न की। एक बग्घी भाड़े पर लिया और दोनों पार्क में पहुँचे। तालाब का सौन्दर्य उसी दिन की भाँति था। कुर्सियो पर अधिक लोग बैठे थे। घने फूलों के पास एक सिमेंट की कुर्सी खाली थी। अभिरामा ने कहा, "चलिये वही बैठेंगे।" अनिलदेव उसके साथ वही आ गये। वे एक कुर्सी पर उसके साथ बैठने में संकोच खाने लगे। अभिरामा ने पहले स्वयं बैठ कर कहा, "बैठिये। डरिये नही। संकोच करना गलत है। बहुत कुछ सोच कर भी लोग बहुत-सी गलतियाँ कर देते है।"

"उठिये न, दूब पर बैठ रहेंगे।" बोले अनिलदेव।

"फिर आप एक निर्बल कैरेक्टर का पार्ट क्यों करने लगे? मैं कहती हूँ, बैठिये चुपचाप, कहानी का ससपेन्स न बनिये।" बोली अभिरामा और अनिलदेव के बैठने के लिये कुर्सी पर पर्याप्त स्थान रहने पर भी पीछे की ओर खिसक गईं।" अब अनिलदेव बैठ गये। अभिरामा ने कुछ संयत होकर पूछा, "देखिये, मैंने आपको कुछ कटु वचन कह दिये हैं, आपको

वह सब कुछ बुरा तो नहीं प्रतीत हुआ ?" अनिलदेव चुप रहे । वे बोले नहीं । पीछे अभिरामा ने भी अपना प्रश्न दुहराया नही । उसने एक दीर्घ साँस लेकर कहा, "देखिये, मुझे कुछ ऐसा लगता है कि आप मेरे परम आत्मीय हैं । और इन्सान अपने परम आत्मीय, अभिन्न को अपने सामने देखता है तो हृदय की सारी बातें खोल कर कह देने की इच्छा होती है । कलाकार एक पूजीपति से चाहे जितना भी खुश हो, मगर वह अपना पूरा व्यक्तित्व उसके सामने नही रख सकता । ऐसा वह किसी कलाकार के साथ ही कर सकता है क्योकि उसमे वह अपना रंग पाता है । अभी आपकी धर्मपत्नी मुझसे मिलने गई थी, मैंने छिप कर उन्हें देखा भी । मगर उस युवक से कहलवा दिया कि वे नही है । सुनिये, आप इसका अर्थ यह न लगा लेंगे कि मैंने उनका अनादर किया है, अन्यथा मुझे महान कष्ट होगा । कहिये, आप ऐसा तो नही समझ लेगे ?" अनिलदेव आश्चर्य से बोले, "आप जो कहती है उसे ही मै मानता हूँ, क्योकि मुझे यह विश्वास है कि आप गलत नही बोलती । मगर आपको ऐसा क्यो करना पड़ा, क्या परिस्थिति ने आपको लाचार किया था ?" अभिरामा ने उत्तर दिया, "बाहर की परिस्थिति मेरे वश थी, और भीतर की स्थिति के वश में मै थी । वे युवक अब मेरे यहाँ प्रत्येक शनिवार को आने लगे है । देखिये न, पहले वे रविवार की सन्ध्या को चले जाया करते थे, मगर आज वे सोमवार को भी न गये । मुझे यह सब अच्छा नही लगता । वनजा का स्वर सुनकर मैं इतनी शरमा गई कि सामने होना कठिन हो गया । मेरा मुख लाल हो गया था । घबड़ाहट में मैंने मुख-हाथ भी न धोया । यों ही दौड़ी-दौड़ी आपके पास चली आयी । एक बात कहूँ आपसे, मानियेगा ?" अनिलदेव बोले, "मानने की ही कोशिश करूँगा ।" अभिरामा ने तब कहा, "देखिये, यह रहस्य आप अपनी देवी जी से न बतलाइयेगा । और इस समय मेरे साथ सिनेमा देखने चलिये । सुना है, स्टीफेन्सन हॉल में एक इंगलिश पिक्चर आया है कि देख कर हैरान होना पड़ता है । एक नाटककार की पत्नी उसे बहुत प्यार करती है, उस पर प्राण देती है, किंतु वासना की

अतृप्ति उसे इतना नीचे गिरा देती है कि उसे एक दिन अपने पति को गोली से मार देना पड़ता है, हाँ।" इस पर अनिलदेव ने कुछ कहा नही, केवल कुर्सी से उठ कर खड़े हुए।

(१६)

यशोविजय अब पटने नही, कलकत्ता में है। उस दिन डाक्टर के मकान में अपना अपमान होने के बाद वह अपनी अटैची लेकर वहाँ से निकल गया और सेक्रेटेरियट के पश्छिम के स्थलो तक रात्रि में घूमता रहा। यहाँ का सेक्रेटेरियट करीब शहर से बाहर है। यही सरकारी कर्मचारियों के चारों ओर पीले-पीले क्वार्टर है। सड़क पक्की है। दोनों ओर इमली और आम्रवृक्ष लगे है। रेलवे लाइन के दक्षिण ओर गर्दनीबाग नामक मुहल्ला है। यहॉ से दो मील की दूरी पर हवाई अड्डा है। लम्बे-लम्बे मैदान, लम्बी-लम्बी सड़कें, जिन पर छोटे-छोटे पुल है—नीचे थोड़ा-थोड़ा पानी है, बड़ी अच्छी लगती है। इधर भारत सरकार ने कुछ लम्बे-लम्बे गड्ढे खुदवा कर मछली पलवा रखी है, जिससे प्रान्त के उन भागों में मछली के बच्चे पहुँचाये जाते है, जहॉ इनकी कमी है। इधर की सड़कें बहुत स्वतन्त्र मिलती है। पचास मील की गति में मोटर चलाते से भी कोई नुकसान नही। इधर ही गवर्नमेट हाउस है। सूर्यास्त के बाद टहलने ही बनता है। कौन एकान्तप्रिय व्यक्ति होगा जो इधर आना न चाहे ?

हाँ, तो इधर टहलते-टहलते जब यशोविजय बिल्कुल थक गया तो एक घने वृक्ष के नीचे बैठ कर सिगरेट पीने लगा, मगर एक दर्जन सिगरेट पी जाने के बाद भी उसे शान्ति न मिली। सिर में कुछ दर्द पैदा होने लगा। उसका सुन्दर कांन्तिप्रिय मुख उदास हो गया। रात हो गई थी। वह वहाँ से उठा और थोड़ी दूर आगे चल कर एक रिक्शा कर लिया तथा सीधे बाँकीपुर जंकशन पहुँचा। उसने यह निर्णय नहीं किया था कि उसे अब क्या करना है। मगर अभी-अभी एक गाड़ी कलकत्ते जा रही थी। उसने कलकत्ते का टिकट लिया और डब्बे में जा बैठा। कई बार ट्रेन खुलने के

पहले इच्छा भी हुई उतर जाये, मगर उतर न सका और कलकत्ता पहुँच ही गया। कलकत्ता उसके लिये नई जगह नहीं थी, कई बार पहले भी आ चुका था। वह शहर में चला आया और कहीं एक कमरा किराये पर का ढूँढ़ कर रहने लगा। पन्द्रह दिन हो गये उसे यहाँ रहते। रांची में जब वह था तो तकलीफ सहना जानता था, मगर अब वैसी बात नहीं रही। वह पैदल चलना तनिक भी पसंद नहीं करता। एक फ्लैट पर कमरा भी डेढ़ सौ रुपये किराये का लिया है। बड़ा आरामदेह है वह स्थान। हर जगह वह ट्राम से जाता है, टैक्सी से जाता है। और वह भी निरर्थक। दिन भर जहाँ-तहाँ टहलता, सिनेमा देखता, रेस्टूरेंट में नास्ता करता और हैवार्डस की बोतलें पीने लगा है। रेस्टूरेन्ट मे चाय पीने बैठता है तो एक कप चाय पीने में आधा घन्टा पैंतालिश मिंट से कम नहीं लगता। आगे में टेबुल पर चाय रखी है। सिगरेट सुलगा कर पी रहा है। कश छोड़ते समय यों ही शून्य में में देखता और जरा-सा कप से होंठ स्पर्श करा देता है। कुछ मिंटों के बाद चाय अथवा काफी ठडी पड़ जाती है और वह बिल के पैसे चुका देता और व्याय से कप की ओर संकेत कर कहता है, "इसे लेता जा। ठंढी पड़ गई। दूसरा ले आने की जरूरत नहीं।" व्याय उसका मुख देखता हुआ जब प्याला उठाने लगता है तो वह पूछता है, "क्या चाहिये तुम्हें, पैसे, इनाम?" और अठन्नी, चवन्नी उसके आगे फेंक देता है। यशोविजय के पोशाक आदि में बड़ा परिवर्त्तन हो गया। पहले वह साधारण धोती, बन्द गले का कुरता और चप्पल पहना करता था, मगर यहाँ आकर उसने सूट बनवा लिये हैं। रेशमी टाई बॉधता है। मुख पर हेजलीन, पाऊडर लगाता है। कमरे में बड़ा-सा आइना है। टेबुल पर शेभिंग स्टीक आदि पड़े हैं। बगल के कमरे में जो लोग रहते है उनसे बतलाया है कि वह बीमा कम्पनी का एजेन्ट है। लखनऊ के ऑफिस से आया है। वे लोग इससे काफी हिलमिल गये हैं। उनलोगों पर इसके व्यक्तित्व का सिक्का है। दो चार बार उन्हें नास्ता वगैरह भी करा दिया है। वे इसकी खूब ही खातिर करते हैं। यशोविजय अब समझने लगा है, आदमी चाहे जिस प्रकार

भी पैसा पैदा कर ले मगर समाज उसी की इज्जत करता है जिसके पास पैसे हैं, जिससे कुछ अपना स्वार्थ सिद्ध हो सकता है । और अब वह भी पैसे कमायेगा। नहीं कह सकता, उसे कमाने के लिये वह क्या-क्या करेगा, मगर कुछ करेगा अवश्य । यदि भाग्यवश किसी कला के साधक से भेंट हो जाती और वह नाजुक परिस्थिति में होता तो यशोविजय बड़ी निर्दयता के साथ कहता, "क्या कला और कला-सौन्दर्य के पीछे पड़े हो। कला के एकान्त साधक वही होते है जिन्हें संसार में कोई काम नही। घर और समाज से जो वहिष्कृत होते है । आज का कलाकार पूरा चार सौ बीस होता है । अपने को कलाकार कह कर समाज से हराम की रोटी खाना चाहता है । वरना हालत कभी सुधरेगी नही। जितना डेकोरेशन आप अपना चाहते हैं, उतना दुनिया भी तो चाहती है।" कलाकार तब नम्र होकर कहता, "देखिये, आपने कहा ठीक । मगर यदि आप कला के रस को समझते होते ; तो मै यह समझता हूँ ऐसा कदापि न कहते ।" इस पर यशोविजय एक फीकी हँसी हँस देता था । इधर दो-तीन रोज से वह कल-कारखाने के गेट पर अक्सर टहलने लगा है । खासकर देहातों में निम्न वर्ग के लोगो में यह परम्परा आज भी चली आती है कि दादा, बाप और पिता—तीनों ने कलकत्ते की नौकरी की। वहाँ एक विश्वास हो गया है कि कलकत्ते चलने पर कोई नौकरी अवश्य मिल जायेगी। छोटी जाति का यदि कोई युवक कलकत्ते में अथवा फौज में नौकरी से डिस्चार्ज होकर गाँव लौटता है तो अपने वर्ग के बड़े-बूढ़े में उसकी एक विचित्र धाक होती है। यदि वह किसी का अर्दली रहा होता है तो पूछने पर बतलाता है कि उसे बड़ा अच्छा ओहदा मिल गया था । ओहदे का नाम नही बतलाता । बहुत आग्रह करने पर वह कहता है, क्या कहूँ, अमेरिकन साहब का अर्दली था। साथ-साथ मोटर में टहलता था भाई ! मेरी विलक्षणता से वह इतना प्रभावित था कि कहीं भी जाता मुझे साथ लिये चलता था। और यदि फौज की नौकरी से लौटा है, तो कहेगा, "भर्त्ती होने के बाद ट्रेनिंग में फर्स्ट आने के कारण कमाण्डर ने मझे मोरचे के आगे भेज दिया था । सौ-दो-सौ सिपाही बराबर मेरे

नीचे में रहते थे, दिन-रात कंधे पर बन्दूक रखे रहना पड़ता था। आगे बढ़ने के लिये सिपाहियों को ललकारता तो वे कहते, "खूब हमारा सूबेदार है।" वह तो हाथ दगा दिया, बम लग गया, वरना कमाण्डर मुझे लेफ्टिनेन्ट बनाने को कह रहा था।" भले ही वहाँ रसद का सामान ढोते-ढोते कंधे छिल गये हों, मगर वह बतलायेगा, यह बन्दूक रखने का ठेला है।

खैर, तो यशोविजय ने अब दूसरा मार्ग अपना लिया है। कल-कारखाने के गेट पर खड़ा रहता है, देहात से आये हुए ग्रामीण जो नौकरी ढूंढ़ते हैं उनसे वादा करता है, उन्हें भरोसा दिलाता है कि वह उन्हें नौकरी अवश्य दिलवा देगा, अधिक से अधिक तनख्वाह मिलेगी,हल्का काम करना होगा, रहने के लिये क्वार्टर मिलेगा, साल लगने पर बोनस के रूप में अलग से रुपये मिलेंगे। छुट्टियो मे घर आने-जाने के लिये कम्पनी की ओर से फ्री रेलवे पास मिलेगा। बस, इतना कहने पर देहाती खुशी से उछल पड़ता था। किंतु इसके साथ 'मगर' लगा रहता।मगर के बाद यशोविजय उन्हें यही बतलाता कि इसके पहले वे यदि उसे पचास रुपये दे दें तो काम हो सकता है। दुःख का मारा व्यक्ति भावी सुख की आशा पर अपने पास के पैसे उसे दे देता और दूसरे दिन यही मिलने का वचन देकर यशोविजय चल देता। मगर कहाँ ऐसा परिचय था उसका जो वह वैसा कर पाता। यह तो सिर्फ रुपये चाहता था। नौकरी चाहने वाला रोज आकर वही खोजता, मगर वहाँ यशोविजय की छाया तक न मिलती। वह निराश होकर लौट जाता था। कई बार ऐसी भी घटना हुई कि उसी व्यक्ति से अन्यत्र भेंट हो गई तो उसने उदासी प्रकट करते हुए कहा, "अरे तुम यहाँ थे या नहीं? तुम्हारी बहाली की चिट्ठी मेरे पते पर आ गई है। वहाँ आकर मैंने तुम्हें कई बार ढूढ़ा मगर तुम मिले नहीं। मेरे डेरे पर आकर अपनी चिट्ठी ले जाओ और जाकर काम करो। इतने दिन कहाँ रहे तुम, इतने दिन की तनख्वाह तो तुम्हारी बन जाती।" और जब वह व्यक्ति अधीर होकर उसका पता पूछता तो वह गलत पता बतला देता। इसी समय किसी ओर से ट्राम गाड़ी आती

लेकिन यशोविजय को इतने ही से शान्ति न मिली। उसने आगे भी कुछ करने का जाल रचना प्रारम्भ किया। अब वह नगर के सस्ते होटलों में जाने लगा। वहाँ अक्सर मध्यवर्गीय लोग ठहरते और भोजन करते हैं। क्लर्कों की मत पूछिये। किरानीगिरी की नौकरी के लिये सैकड़ों उम्मीदवार से भेंट होती। कोई अपनी योग्यता मैट्रिकुलेट बतलाता। कोई बतलाता कि वह शौर्टहैण्ड भी जानता है। कोई कहता, "मेरा चार वर्ष का ऑफिस एक्सपीरीयन्स है। बड़े साहब के 'तुम' कहने पर रिजाइन दे दिया।" कोई बतलाता, "मैं अमुक जगह के जेनरल सेक्रेटरी का प्राइवेट क्लर्क था।" कोई अपनी हैण्डराइटिग दिखला कर यह बतलाता कि वह सुन्दर हरफ लिखता है। यशोविजय ने इन लोगो से अपना परिचय ऐसा दिया कि लोग इसके पीछे पड गये। उसने कहा, "भैया, नौकरी की इस समय कैसी किल्लत है, मैं ही जानता हूँ। क्योकि चार वर्ष से एम्प्लायमेंट एक्सचेंज में हेड क्लर्क रहने का मौका मिला है। आज भी सुपरिण्टेंडेण्ट साहब कहते हैं, चले आओ। मगर मैंने नौकरी पर लात लगा दी है। आप चाहें, तो मैं उनसे कह दूगा। आपका कॉल पहले हो जावेगा, नाम जाकर रजिस्टर्ड करा आइये। वहाँ तो कॉल उन्ही का होता है जिनकी सिफारिश पहुँचती है।" वे पूछते हैं, "इन दिनों आप क्या करते हैं?" वह उत्तर देता, "मैंने जेनरल एजेन्सी खोल रखी है। ऐडवरटिजमेंट सिक्यूर करता हूँ, बड़ी-बड़ी कम्पनियो के माल बिकवा देता हूँ, प्रेसों को दिलवाता हूँ। जहाँ आप चाहें, लिख दूगा नौकरी हो जावेगी। मगर....।"

"मगर?"

"आपके लिये मैं अपनी प्रेसटीज को जाने दूगा, इसका भी आपको ख्याल करना होगा। अधिकारियों के अकेले में मिलने पर मुझे उन्हें खुश करना पड़ता है। पान, पत्ता, जलपान, सिनेमा...।" एक बड़े शुभ-चिंतक की भाँति तब यशोविजय यह उत्तर देता था।

"आप अपने पास से क्यों खर्च करेंगे, उसका दाम हम देंगे।"

"खैर, वह तो आपका कर्त्तव्य है ।"

"कितना चाहिये इसके लिये ? कहिये न ।"

"बड़ा झंझट है भाई ! अपने काम के लिये गधे को भी बाबा कहना पड़ता है । बाहर में ऑफिसरों को और घर पर उनके बच्चों को भेंट देनी होती है । खिलौने, अंग्रेजी मिठाइयाँ, रबड़ की मूरतें . . . ।" इसके बाद यशोविजय अपना चेहरा इस प्रकार बना लेता कि ऑफिसरों के इस व्यवहार से उसके दिमाग पर एक असाधारण चोट पहुँचती है । अपने बाल-बच्चे और परिवार की स्थिति उन नौकरी के उम्मीदवारो का पीछा छोड़ने को न थी । वे अधिक-से-अधिक रुपये निकाल कर उसे देने लगते । एक बार यशोविजय को इसके लिये दुःख अवश्य होता, मगर हाथ समर्थन न करता और नोट पतलून की जेब में चले जाते । अब यशोविजय को अपना डेरा बदलते रहना पड़ता । धर्मतल्ला में रहता तो बतलाता, क्लाइव स्ट्रीट्, भवानीपुर रहता तो कहता, टालीगंज ।

(१७)

उस रात पार्क में अनिलदेव अभिरामा की बात टाल न सके और उन्हें उसके साथ सिनेमा जाना पड़ा । दुर्भाग्यवश अभिरामा ने जो इंगलिश पिक्चर देखने का निश्चय किया था, वह पिक्चर चली गई थी । पर, ऐसा होने से वे लौट न आये और जो भारतीय फिल्म चल रहा था, उसे देखने लग गये । रात्रि के बारह बजे सिनेमा समाप्त हुआ तो दोनो हॉल से बाहर निकले । सामने एक छोटा-सा मैदान था । उस ओर संकेत कर अभिरामा ने अनिलदेव को अपनी ओर आकर्षित कराया और पूछा, "क्या आप मेरे साथ वहाँ थोड़ी देर बैठ सकते हैं ?"

"क्यों ?" पूछा अनिलदेव ने ।

"कुछ बातें करनी हैं आपसे ।"

"चलिये ।"

और अनिलदेव को लेकर मैदान में चली आयी । हरी-हरी दूबें उगी थीं । वह वहीं अपने पैरों को फैला कर बैठ गई । अनिलदेव खड़े रहे । अभिरामा

ने कहा, "बैठिये न।" अनिलदेव बैठ गये तो अभिरामा बोली, "मेरा बदन, न जानें, क्यों रोमांचित हो रहा है, क्या करूँ ?"

"चलिये घर। देर तक हॉल में बैठे-बैठे रोमांच हो आता है, गरमी छिटक जाती है, मिचली भी आ सकती है। घर चल कर आराम कीजियेगा, सब कष्ट दूर हो जावेगा।" बोले अनिलदेव। आस-पास सन्नाटा था। सड़क से मोटर, ताँगा, रिक्शे वगैरह आ जा रहे थे। अभिरामा ने पूछा, "आप सच कहते हैं, घर पहुँच जाने से मेरा रोमांच होना बंद हो जावेगा।"

"हाँ, ऐसी ही आशा है मुझे।"

"देखिये, आप झूठ बोल गये।"

"क्यों, कैसे जाना आपने ?"

"इसका उत्तर आपके पास है।"

"नही, मैं तो नही समझता।"

"मै पूछती हूँ, आप मुझसे इतना भागते क्यों है ?" अभिरामा ने पूछा।

"क्यों इसमें भागने की क्या बात पड़ी है ?"

"आप चिंता न कीजिये। मै भारतीय फिल्मों की नकल कर रही थी।" बोली वह।

"भारतीय फिल्मों की नकल, कैसी नकल ?" अनिलदेव ने आश्चर्यवश पूछा। अभिरामा बोली, "यही स्वाभाविकता की बात लेकर। इतना अस्वाभाविक चरित्र-चित्रण होता है कि मत कहिये। हीरो केवल नाम-मात्र के लिये कुछ करता है, बाकी सारी उत्तेजना का प्रदर्शन हीरोइन की ओर से ही होता है। बात को दबा कर रखना वह जानती ही नहीं। हीरो ठंढे दिल से प्रेम-प्रलाप करना चाहता है और हीरोइन उसके बदन पर सवार होने का मौका चाहती है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि हीरो एकदम से नपुंसक ही है....।"

"न ुंसक....।" इतना कह कर अनिलदेव भी रुके। उधर आगे बोलने वाली बातें को अभिरामा ने पहले रोक लिया था। उसने जल्दी से

अपने होठ दाँतों से दबा लिया। उसने फिर शीघ्र ही कहा, "उफ्, मैंने यह क्या कह दिया ! नपुंसक शब्द "वलगरिटी' की ओर उन्मुख करता है न ! अफसोस...!" इस पर अनिलदेव ने कुछ न कहा। एक क्षण रुक कर अभिरामा ने पूछा, "ऐसा क्यों होता है। क्या कहानी-लेखक वहाँ न रहता ?" इस प्रकार प्रश्न करने का कारण यह था कि बातचीत के सिलसिले में अनिलदेव ने एक बार बतलाया था कि उनके एक मित्र कलकत्ते फिल्म कम्पनी में संगीत-निर्देशक थे। वहाँ उन्हीं के साथ इनको एक डेढ़ माह ठहरन का अवसर मिला था। उत्तर में अनिलदेव बोले, "लेखक का वहाँ कोई मूल्य नही होता। जो करता है सो डायरेक्टर। वहाँ तो फिल्मी-सेठ कहानीकार को मशीन समझते है। जैसी कहानी चाहते है, लेखक को लिखना पड़ता है। नही तो क्या हिन्दी-साहित्य इतना गरीब है जो फिल्म बनाने के लायक कोई कहानी ही नही। पुराने उपन्यासकारो को आप देखिये। शायद ही उनके किसी एक उपन्यास का फिल्म बना है। सिनेमा की कहानियों में स्वाभाविकता, कथनोपकथन का उतार-चढ़ाव, साहित्य की मीमासा और कला-सौन्दर्य कोई खोजे तो वह असम्भव है। यदि कोई होशियार लेखक भावपूर्ण डायलॉग लिख भी दे तो डायरेक्टर उन्हें उड़ा देते है। शूटिग के समय तक रिहर्सल,स्क्रिप्ट में काट-छाँट करते रहते है। शूटिंग करने के पहले एग्रीमेंट पर लेखक से लिखवा लेते है कि फिल्म में सुरुचिपूर्ण एवं बाजार में चलने लायक,निर्माता जहाँ भी चाहे, अपने मन से परिवर्त्तन कर सकता है। वहाँ तो निर्माता वह कहानी चाहता है, जो 'बाक्स ऑफिस हीट' करे।"

"और जो लेखक स्वाभिमानी हो ?"

"वह लेखक फिल्म में जायेगा ही नहीं।"

"यह आपने ठीक कहा। वह फिल्म में जायेगा ही नही। मगर आपसे एक बात पूछूं ?" पूछा अभिरामा ने।

"पूछिये।"

"मैंने जो "नपुंसक" ब्द शकह दिया, क्या इससे आप यह समझ गये कि मेरे मन में कुछ विकार पैदा हो रहा है। सच कहिये, छिपाइये नहीं।"

"नहीं, मैंने तो ऐसा कुछ नहीं सोचा।" बोले वे। अभिरामा ने कहा, "नहीं, भ्रम हो जाता है। लोग समझ जाते हैं, अब वह गिर रही है, उसका धीरज टूट रहा है, उसके सत्तीत्त्व की कड़ियाँ टूट रही हैं, वह संयम की श्रृंखला से बाहर हो रही है। मगर आप मुझे शपथ देकर पूछ लीजिये, मेरे मन में कोई भी विकार नहीं, मैंने कभी भी गंदी दृष्टि से....।"

अभिरामा रुक गई। उसके स्वर में करुणा का आवेग था। वह अधिक भावुक होती चली जा रही थी। बातें करते समय वह समझ रही थी कि वह वास्तविक जगत् के बिल्कुल समीप है, वह जो कुछ भी बोल रही है उचित बोल रही है, इसमें सन्देह की आवश्यकता नही। अनिलदेव ने उसे इस आवेश में देख कर समझा, अब अगर सान्त्वना न दी गई तो ये और भी जाने क्या-क्या बोलती ही रह जायेगी। उन्होंने प्रसंग बदलने के इरादे से कहा, "जो भी हो, मगर मैं तो आपको कुछ कह नही रहा हूँ। सिनेमा समाप्त हो गया। चलिये आपको घर पहुँचा दू, आराम कीजिये। फिर भेंट होगी।"

"मगर आपको मुझसे घृणा है अनिल जी ?"

"क्यों, आपको यह गलतफहमी कैसे हो गई ?"

"नही, यह मै पहले कह चुकी हूँ, फिर भी कह रही हूँ आप मुझसे इतना भागते क्यों हैं ? मै अपनी ओर से आपको विश्वास दिलाती हूँ, मैं अपने स्थान पर ठीक हूँ। मुझसे आपका कोई भी अनिष्ट न होगा। मगर देखिये ऐसा छोटा शब्द मुख से निकल गया कि मैं भीतर ही भीतर मरी जा रही हूँ।" बोली अभिरामा और हँस पड़ी। अनिलदेव मन-ही-मन आश्चर्य में पड़ गये। यदि उन्हें ऐसा शब्द कह देने का दुःख है तो वे फिर ऐसा न कहें, उसे दुहरावें नहीं, किंतु दुःख को व्यक्त करते समय इस हँसी की क्या आवश्यकता आ पड़ी। वे अभिरामा के इस मनोविज्ञान को समझ न सकते थे। वे सीधे-सादे व्यक्ति थे। यशोविजय की पत्नी होने के कारण उनके प्रति केवल सद्भावना और सहायता का भाव था। अनिलदेव बोले, "मैं तो इसे गलती नहीं समझता। यदि आप गल्ती समझती भी हैं तो क्या हो गया।

गलती तो हमीं से होती है और हम ही सुधार भी करते है। आप इस प्रकार चिंतित क्यों होती हे।" अभिरामा में एक प्रकार की विह्वलता का समावेश होने लगा। वह बोलने लगी, "देखिये, इस शब्द ने मुझे निर्लज्ज बना कर आपके सामने रख दिया। लेकिन बात और भी है। सुनिये, नारी में शर्म, शील, संकोच और संयम तभी तक विद्यमान है जब तक आप उसे वस्त्र एवं परिधानो में आवृत देखते है, कल्पना कीजिये, मै ही यहाँ हूँ। यदि मुझे ही कोई पुरुष अनावृत्त कर दे तो मेरा सब कुछ जाता रहेगा। मै इतना नीचे चली जा सकती हूँ कि साधारण पुरुष इसका अनुभव भी न करता होगा। किंतु इसके साथ मै आपसे एक बात और कहूँगी। मनुष्य का असली व्यक्तित्व उसकी नग्नता में ही है, आवरण में नही। फिर भी यह संसार है, सभ्यता का जो क्रम चल रहा है, समाज की जो परम्परा अब तक जीवित है उसका अनुसरण तो करना ही होगा। आपको पतलून पहनना होगा, मुझे साड़ी पहननी होगी। क्यो, मै असत्य कह रही हूँ, कहिये न। मै तो....।"

"नही, आप ठीक ही तो कह रही है।" उसका आवेश कम करने के लिये अनिलदेव ने बीच ही मे यह कहकर उसे चुप कर देना चाहा। अभिरामा ने कहा, "मै तो इस विषय पर कभी कठिन होकर सोचती नहीं, मगर परिस्थिति मजबूर करती है। मेरे यहाँ जो युवक अतिथि आये हैं, मै नही समझती थी, उनके मन में मेरे प्रति कोई पाप जगा होगा। मगर आज दोपहर को जब मै अपने कमरे मे साडी बदल रही थी तो वे किसी काम से आँगन मे आये और मुझसे छिप कर मुझे देखने लगे। हालांकि मैने उन्हें यह कार्य करते देख लिया था, मगर कुछ बोली नही। साड़ी बदल कर मैंने कहा, "आइये न। क्या काम है।" इस पर वे मेरे पास न आकर सीधे द्वार पर जल्दी चले गये। क्या उन्हें यह उचित था? तारीफ यह कि मेरे साथ पढ़े-लिखे है। मै उनके वे पत्र दिखलाऊँगी आपको जो वे मेरे पास भेजा करते थे। प्रारम्भ में लिखते है--प्रिय बहन लिटिल! इसका क्या माने। यह उनकी मजबूरी नही थी? मुझे सम्बोधित करने का उन्हें कोई दूसरा उपाय नही है तभी तो। किंतु सोचिये, यह कैसी यौन-

भावना है। मैं एक प्रगतिशील एवं बड़े भावुक कलाकार की पत्नी हूँ। मुझे मार्क्स के सिद्धान्त चाहिये। फ्रायड् का यौनवाद नहीं। आप तो यह सोचते होंगे, मैंने आपको निरर्थक यहाँ रोक लिया, मगर मुझे ये सारी बातें आपसे कहनी थीं। देखिये, मै चाहती हूँ, उन्हें मना कर दू, उन्हें अब मेरे अतिथि बनने की आवश्यकता नहीं। इस बारे में आपको कुछ सूझे तो कहेंगे, मैं भी सोचूगी, क्यों ?"

"सोचूंगा।" सरल होकर बोले अनिलदेव। अभिरामा इस बार फिर मुस्कुरा पड़ी। फिर एक क्षण बाद उसने कहा, "इसमें उदास होने की कोई आवश्यकता नही। ताली एक हाथ से नही बजती....।" और फिर बीचही में एकाएक बोली, "छोड़िये ये सारी बातें। गाड़ी कीजिये, चलिये घर। जो परिचित देखेगा, सो भी क्या अर्थ लगा लेगा....।"

अनिलदेव ने एक बग्घी भाड़े का किया और दोनों बैठ गये। अभिरामा हँस कर बोली, "सन्देह सत्य का शत्रु है।"

(१८)

कलकत्ते में रहते जब बहुत रोज हो गये तो यशोविजय अपने आप में झुँझलाने लगा और एक दिन अपने कमरे में बहुत उदास होकर बैठ गया जैसे उसे एक बहुत बड़ा निर्णय करना है, एक बड़ी-सी मंजिल तय करनी है। कल रात्रि की घटना है। वह थियेटर देखने गया था। थियेटर समाप्त होने पर जब वह हॉल से बाहर निकलने लगा तो किसी ने पुकारा, "यशोविजय ?" यशोविजय ने पहले अकचका कर अपने चारों ओर देखा और फिर रुक गया। धीरे-धीरे थियेटर हॉल खाली हो गया। इसी समय एक लम्बा-सा खूबसूरत नवजवान उसके सामने आकर बोला, "मैं आपकी परेशानी का कारण समझ रहा हूँ। कारण यह है कि यहाँ आपको एक अपरिचित ने अचानक रोक लिया है। आप घबड़ायें नहीं। मैं आपका अपना ही हूँ, क्योंकि भगवान् ने मुझे भी कला से शौक दे रखा है।"

"आप कौन ह ?" यशोविजय ने पूछा, और साथ ही सिगरेट का डब्बा उसकी तरफ बढ़ा कर कहा, "यहाँ एक बार मुझे पुकारा गया, मै तो सचमुच चौंक गया।"

"जी, मै यहीं थियेट्रिकल कम्पनी में आर्ट डायरेक्टर हूँ। मेरा नाम "आनन्द" है। आइये, बैठिये तनिक। बहुत मुद्दत के बाद आपके दर्शन हुए।" यशोविजय के हाथ से सिगरेट लेते हुए डायरेक्टर आनन्द ने कहा और साथ ही उसे अंदर चल कर बैठने का संकेत दिया। यशोविजय को एक बार उस पर कुछ सन्देह-सा हुआ। उसे लगा आनन्द पुलिस का आदमी है, गुप्तचर आदि है। मगर फिर भी वह निःसंकोच भाव से स्टेज को पार कर विंग में आ गया। कुर्सियाँ लगी थी, दोनो बैठ गये। कुर्सी पर बैठते ही आनन्द ने चाय मँगवायी। कहा, "पीजिये।" चाय का प्याला उठाते हुए यशोविजय ने पूछा, "क्षमा कीजियेगा मै आपसे यह पूछूगा कि आपने पहले मुझे कहाँ देखा है ?"

"सहारनपुर, प्रगतिशील कलाकार संघ के अधिवेशन में।" बोला आनन्द।

"धन्यवाद !" यशोविजय ने कहा और उसकी भाव-भंगिमा पर एक मार्मिक वेदना अभिव्यंजित हो उठी। फिलहाल वह जो कर रहा है उसे मालूम है। फिर कला कलाकार की बात क्यो आ गई। जिसे छोड़ दिया है, छोड़ दिया है, अब क्या ? जिसकी महफिल से उठ गये, उसकी पायल की झंकार भी क्या सुनूं ? हाँ, कभी बैठा था तो सब कुछ खोकर बैठा था। मगर धोखे में कही बैठ भी गया तो सन्देह है कि दिलसे बैठू कि न बैठूं। उसने एक दीर्घ साँस छोड़ कर कहा, "देखा होगा....।" और तनिक मुस्कुरा पड़ा जैसे वह अपने ऊपर ही व्यंग कस रहा हो। आनन्द ने डरते-डरते पूछा, "तो इधर कैसे-कैसे कष्ट किया आपने ?"

"समय ने कराया है, कोई बात नहीं।"

"समय ने ?" आनन्द ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ घर से कुछ तबीयत ऊब गई तो चला आया, आप तो यहाँ मजे में हैं ?"

"सब कृपा है आप लोगों की। यहाँ कितने दिनों से है ?"

"यही कोई पन्द्रह रोज से। आज मन में आ गया, जरा थियेटर देख लूं।"

"बड़ी दया की आपने। कैसा लगा आज का खेल, सामाजिक कहानी थी।"

"अच्छा था। मुझे पसन्द आया। डायरेक्शन भी ठीक था।"

"यह तो आप मुझे जान कर कह रहे हैं।"

"नहीं मैं सच कहता हूँ, अच्छा बन पड़ा था।" यशोविजय ने आनन्द को विश्वास दिलाया।

"यहाँ तो गुण ना हेरानो गुण ग्राहक हेरानो है, वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। हमारे सेठ साहब कहते है, सीन-सीनरी उतनी अच्छी नहीं हो पाती कि दर्शक आकर्षित हो सकें। मै आपसे एक अनुरोध करूँगा. . . .।" कह कर आनन्द यशोविजय का मुख देखने लगा। यशोविजय ने कहा, "कहिये, आप तो आर्टिस्ट हैं साहब। आर्टिस्ट का हृदय तो खूब समझते होंगे।" आनन्द बोला, "मुझे तब बड़ी खुशी होती यदि आप रोज आधा घंटा समय यहाँ दे देते।" यशोविजय ने पूछा, "किसलिये ?"

"सिर्फ सीन-सीनरी में उचित संशोधन करा देते आप। सारा काम तो मैं करूँगा। मै तो कलाकार हूँ, खूब जानता हूँ, कलाकार की सृष्टि का मूल्य देना सर्वथा असम्भव है, किंतु उस आध घंटा के लिये सेठ साहब जहाँ तक आपकी सेवा कर सकेंगे, मै चाहूँगा कि उन्हें आप यह मौका दें।" बोला आनन्द और जिज्ञासा की दृष्टि से यशोविजय को देखने लगा। कलाकार पैसे से अधिक अपनी कला का प्रसार चाहता है, अपनी कला की उचित प्रशंसा चाहता है, अपना पारखी, कला मर्मज्ञ चाहता है। आनन्द, प्रकृति-प्रिय कलाकार और बहुत ही नम्र व्यक्ति जान पड़ा। यशोविजय उसकी बात टाल न सका और उसने कह दिया, "अच्छा मैं आऊँगा।" इसके बाद आनन्द

ने अपने थियेटर की हीरोइन को बुला कर सामने बैठाया और दोनों का एक दूसरे से इस प्रकार परिचय कराया, "आप हैं, मि० यशोविजय, हिंदुस्तान के ख्याति प्राप्त चित्रकार एवं कार्टूनिस्ट। प्रगतिशील कलाकार संघ के उन्नायक। और आप हैं, सुश्री दीपमाला। हमारी थियेट्रिकल कम्पनी की हीरोइन। ट्रेजडी खेल में अपना पार्ट निबाहने में आप शानी नही रखतीं। बहुत भावुक और कलाप्रिय हैं।"

दोनों ने एक दूसरे को बड़ी नम्रता के साथ प्रणाम किया। आनन्द ने दीपमाला को यह भी बतला दिया कि यशोविजय कल से यहाँ तब तक नित्य आध घंटा के लिये आयेंगे, जब तक वे कलकत्ते में है। इस पर दीपमाला एकाएक कुछ उदास-सी हो गई, मगर पीछे उसने अपने को सम्हाल कर कहा, "हमें बड़ी खुशी हुई। हम कुछ सीख सकेंगे। हमारी कम्पनी का भाग्योदय हुआ।" और तब आनन्द ने यशोविजय को बहुत दूर पहुँचा कर संतोष की साँस ली। तो अब यह दूसरा दिन है और दोपहर का वक्त। यशोविजय अपने कमरे में खिन्न मुद्रा में बैठा विचार कर रहा है। राँची के मैदान में बैठे एडवोकेट की पंक्तियाँ याद आ रही है। उसने स्पष्ट होकर कहा था, "कलाकार किसी की मातहती इसलिये न स्वीकार कर ले कि उसे पैसे कमा कर राजा बनने का शौक है, वह मातहती इसलिये न मान ले कि उसे किसी का अनिष्ट करना है, बल्कि अपने को कायम रख कर समाज को स्वस्थ, विशुद्ध कला दे सके।" किंतु आज के समाज में केवल ऐसे ही कलाकारों की आवश्यकता नहीं जो नौकरी कर पुरानी चक्की में पीसते जायें और अपने मनोवांछित कला-निर्माण की कल्पना करते-करते समाप्त हो जाये। आज ऐसे कलाकारों की भी आवश्यकता है जो इसके विरुद्ध क्रान्ति करें, वह पूछना चाहता है समाज से, यदि समाज कलाकार की चिंता नहीं करता, वह उसे भूखों मरने देता है, उसके बच्चों को तड़पने देता है, उसकी पत्नी को अपने अरमानों के लिये तरसने देना उसे पसंद है, तो उसे ही क्या अधिकार है कि कलाकार से वह विशुद्ध कला की मांग करे। कलाकार में यदि एक ओर सृजन-शक्ति का बाहुल्य है तो दूसरी ओर संहार करने का भी

महाबल प्रस्तुत है। उसकी मीठास में यदि अमृत की जीवनदायिनी प्रेरणा छिपी है तो उसकी रुखाई में विष भी व्याप्त हो सकता है। क्रान्ति की ओर यदि उसने तनिक-सा सिर फेरा तो विश्व की भीषण महाक्रान्ति घूंघट खोल कर नाच उठेगी, संसार से 'मनोरंजन' शब्द का लोप हो जावेगा. . . .किंतु ? यह तभी हो सकता है, यदि कलाकार समाज की छाती में घुन बन कर प्रवेश कर जावे। तब समाज ठोस नहीं, खोखला हो जावेगा।

अन्तत: यशोविजय ने सोचा, इसमें मातहती मानने का कोई प्रश्न ही हीं। वह थियेटर में जायेगा। और शाम को छै बजे वह थियेटर में आकर आनन्द से मिला। सेठ वहीं थे। उनसे भी परिचय प्राप्त हुआ। तय यह रहा कि प्रत्येक दिन के लिये यशोविजय को पचास रुपये मिला करेंगे। अस्तु।

यहाँ दो सप्ताह बीत गये। दीपमाला का मनोविज्ञान अजब था। जब रिहर्सल के समय सभी होते तब वह यशोविजय से बातें करती, हँसती, बोलती और यदि वह कभी एकांत पा जाती तो ऐसी उदास बन जाती जैसे उसने कोई गलती की है और यशोविजय उस गलती का कारण पूछ रहा है। इधर खेल की दृश्य-दृश्यावलियाँ बहुत सुन्दर बनने लगी थीं। दर्शकों के मुख पर प्रत्येक दृश्य का वर्णन पाया जाता। आनन्द की आज्ञा थी, स्टेज पर जाने के पहले दीपमाला अपना "मेक-अप" यशोविजय से पास करा ले, यदि वे कोई दूसरा सुझाव दें तो वैसा करे भी। कई बार ऐसा हुआ भी। दीपमाला को अनेकों बार अपना "मेक-अप" बदलना पड़ा। स्टेज पर वह अधिक आकर्षक दीख पड़ती। यशोविजय में भी एक विशेषता ही थी। समय के पाँच मिनट पहले आता और काम करा कर चला जाता था। फिर खेल प्रारम्भ होने के समय आता और कुछ क्षणों में दीपमाला का "मेक-अप" देख कर चला जाता था। दीपमाला यशोविजय से मन-ही-मन बहुत खुश रहती, मगर उसकी विचित्रता उसे पीछे खींच दिया करती थी। आनन्द को यशोविजय की कमी बहुत खटकती थी। इसलिये थोड़ी देर उसके साथ रहने के लिये उसने उसे दीपमाला के बंगले पर चाय-पार्टी देने की योजना

बनायी। उसने दीपमाला से कहा, वह यह प्रस्ताव यशोविजय के सामने रखे, मगर उसके लाख सर पटकने पर भी दीपमाला ने आनन्द की यह आज्ञा टाल दी। अंत में इस कार्य को आनन्द ने स्वयं किया और यशोविजय ने यह बात मान ली।

दूसरे दिन दीपमाला के बंगले पर चाय-पार्टी का अच्छा प्रवन्ध हुआ। बंगले के शामने लम्बा चौड़ा सहन था। नीचे की जमीन सिमेंट से पलास्तर की हुई थी। कम्पनी के सभी कलाकार और सेठ साहब के कुछ प्रमुख मित्रगण भी आमंत्रित थे। दीपमाला बड़ी कीमती सलवार, जम्फर आदि पहने थी। सुन्दर कानों में रत्न-जड़ित इयरिंग हिल रही थी। बायें हाथ में पतले काले चेन की घड़ी। बेणियों में चम्पा-चमेली के फूल। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे आज उसका सम्पूर्ण सौन्दर्य उसके प्रत्येक अंग में पुञ्जीभूत हो उठा है। प्रत्येक की दृष्टि उस पर थी। कुर्सी टेबुल पर प्लेट सज गये थे। यशोविजय, आनन्द दोनों दीपमाला के समीप ही बैठे थे। इसी समय दीपमाला को प्यास लगी। उसने नौकर को बुला कर कहा, "पानी ले आना।" नौकर पानी लेने गया तो दस मिनट बाद लौटा टेबुल पर चाय का ट्रे आ चुका था। दीपमाला के नेत्रों में रक्त भर आया। नौकर ने आकर कहा, "पानी है, मिस!" दीपमाला ने उत्तर में उसके हाथ से गिलास ले लिया और उसके मुख पर कस कर तमाचा मारा। नौकर का गाल लाल हो गया। वह लौटने लगा चुपचाप बिना दीपमाला की ओर देखे, तभी दीपमाला को अनुभव हुआ किसी ने उसके हाथ का गिलास झटका देकर गिरा दिया है। उसने फिर कर देखा तो यशोविजय क्रोध से काँप रहा था। उसके कुछ भी कहने के पहले यशोविजय ने काँपते हुए कहा, "दीपमाला, मै कलाकार यशोविजय बोल रहा हूँ। मैं कागज पर लिख देने को तैयार हूँ, संसार में पैसे के बल पर तुम सब कुछ कर सकती हो, किंतु कला-निर्माण नहीं। भविष्य में सब कुछ हो सकती हो, सफल कलाकार नही। कलाकार इतना निर्मम नहीं होता। मैं जेब काट कर जीना पसंद करूँगा, मगर इस कम्पनी में रहना नहीं जहाँ मानवता के विरूद्ध होकर जीने वाले कलाकार मौजूद हैं....।"

और यशोविजय कुर्सी छोड़ कर जाने लगा। अनेक कलाकारों ने उसे रोकना चाहा, मगर यशोविजय ने रिवाल्वर दिखला कर कहा, "खबरदार! पास न आओ, वरना दीपमाला को मार दूंगा।"

(१९)

पिछली घटना के तीन दिन उपरान्त अनिलदेव को अभिरामा से भेंट न हुई। न वे स्वयं मिलने गये। चौथे दिन शाम को दफ्तर से लौट कर आये तो वनजा ने अभिरामा का लिखा उनके नाम का एक पत्र दिया। पत्र में उन्होंने सूचना दी थी कि उनकी छाती में परसों से भयानक दर्द हो रहा है, और साथ ही उन्होंने अनिलदेव को बुलाया भी था। बिना नास्ता वगैरह किये ही सूट उतार कर धोती कुरता पहने वे चले अभिरामा के यहाँ। वे सोच रहे थे, दर्द परसों से ही प्रारम्भ है, बीच में क्यों सूचना उन्होंने नहीं दी। उन्होंने कहा था, अतिथि जो आये है, उन्हें अब आने के लिये मना करूँगी। क्या हुआ। उसे उन्होंने मना तो नहीं कर दिया, उससे उनके हृदय को कोई सदमा तो नहीं पहुँचा है। अनेक प्रकार की बातें सोचते-सोचते वे जब यशोविजय के मकान पर पहुँचे तो द्वार पर काफी सन्नाटा था। मालूम होता था, अंदर मकान में कोई है ही नहीं।

"यशोविजय हैं?" अपने मित्र का नाम लेकर उन्होंने आवाज दी। स्वर में कोई उत्तर न आया। वे चुप रहे। दो क्षण बाद एक औरत भीतर से निकली और उसने अनिलदेव से कहा, "आइये, वे आपको अंदर बुला रही हैं।" अनिलदेव ने संतोष के लिये पूछा, "कैसी है उनकी तबीयत?"

"...." मगर औरत ने कुछ कहा नहीं, वह असावधान होकर चली गई। अनिलदेव ने एक बार हैरानी की दृष्टि से उसे देखा और आप मकान के भीतर प्रवेश कर गये। कमरा में जाने के पहले ही उन्हें अभिरामा की बोली सुनायी पड़ी, "चले आइये। इसी कमरे में हूँ....।" और वे कराह उठीं। अनिलदेव ने कमरे में प्रवेश कर देखा। ऊँची खाट पर बिछावन और तकिया के सहारे वह पड़ी हैं। बाल और वस्त्रादि अस्तव्यस्त हैं। बगल में टेबुल पर एक दो शीशी जिनमें दवाइयाँ थीं और एक गिलास रखा

हुआ है। बगल में एक आराम कुर्सी भी रखी थी। पास आते ही अनिलदेव ने पूछा, "आपकी यह दशा कब से हुई, बहुत निर्बल हो गई है।" उत्तर उन्होंने करवट बदलते हुए कहा, "पहले बैठिये न।"

"कहिये। मैं तो बैठूंगा ही....।" कहते हुए अनिलदेव पास की आराम कुर्सी पर बैठ गये। यहाँ से उसका मुख उनके काफी समीप पड़ता था। अभिरामा बोली, "उस दिन रात को पार्क से लौटी तो सर कुछ पहले से ही भारी था। खाना बन कर तैयार हुआ तो अतिथि महोदय का पता ही नहीं। बारह बजे तक जगना मेरे लिये तनिक असह्य हो जाता है। मेरा जी उनकी करतूत से पहले ही जला हुआ था। वे आये तो मैंने देर कर आने का कारण पूछा। उत्तर में वे बोले, "मेरा आना आपको यदि भार प्रतीत होता है तो मै अब आपको यह कष्ट न दूगा।" मैंने सम्हाला, "मैंने आपको ऐसा कब कहा है। मगर घर पर टहलने के बाद सवेरे लौट आना चाहिये।" मगर घटना यह हुई कि सुवह होते मेरे जगने के पहले वे अपने सामान आदि लेकर गायब हो गये। कहाँ मै उन्हें आने के लिये मनाही करने वाली थी, वे आप चले गये और यह कह कर कि अब यह कष्ट न देंगे। उस दिन मै उनकी खोज के पीछे बहुत परेशान हुई। स्वयं स्टेशन के प्लैटफार्म पर ढूढ़ती फिरी। मगर कुछ पता न चला। मै अब भी सोचती हूँ, दूसरे का लड़का कही डूब धँस कर मर गया तो बेकार का अपयश माथे चढ़ जावेगा। मेरा मतलब यह है कि आज के नवनिहाल लोग बड़े हल्के ढंग के भावुक होते है। अपने आवेश को ही वे अपनी भावुकता और अपनी ईमानदारी समझते है। आपही सोचकर जवाब दीजिये न, एक गलतफहमी को विश्वास की दृष्टि से देखना कितनी बड़ी भूल है ?" और अनिलदेव को आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगी।

"गलतफहमी को विश्वास की दृष्टि से देखना तो बड़ी भूल है।" बोले अनिलदेव। अभिरामा ने कुछ और तेज स्वर में कहा, "इसका माने आप यह न लगा लेंगे कि उनके चले जाने से ही मेरी छाती में दर्द पैदा हो गया है, अथवा उनसे मेरा कोई समीप का सम्पर्क था। क्योंकि 'वे' चले गये

सो मैं 'ज्यों की त्यों बनी रही, मेरा स्वास्थ्य आबाद रहा, फिर इनका क्या बिसात ।"

"सो तो है। आपको यह दर्द कब से प्रारम्भ हुआ ?" अनिलदेव ने पूछा ।

"उसी दिन सायंकाल से।" उत्तर दिया अभिरामा ने । अनिलदेव ने पूछा, 'दर्द कैसा है ?'

"राइट-हैन्ड में एकाएक जोरों का दर्द उभरता है और कुछ क्षणों में अच्छा हो जाता है । परन्तु क्षणों में ही, मत पूछिये, शरीर की क्या दशा हो जाती है। मै मारे दर्द के रोती नही ; सब कुछ हो जाता है। एक बार पैखाने में दर्द उभरा, वहीं गिर ही गई । गर्मी बदन में छिटक गई। सारा बदन पसीना से सराबोर हो गया ।"

"अच्छा ! तब तो बड़ा आपत्तिजनक दर्द है ।" अनिलदेव आश्चर्य से बोले और पूछा, "यह दवा कैसी है ?"

"यही गुरुकुल कांगड़ी वाले से मंगवा ली है ।"

"नहीं, नहीं, ऐसा न कीजिये ।किसी सुयोग्य वैद्य से दिखलाना चाहिये । गुरुकुल कांगड़ी वाले केवल दवा-विक्रेता हैं, चिकित्सक नहीं। मैं तो सलाह दूंगा, एक बार परमेश्वर पर विश्वास करके डा० हेमचन्द्र से दिखला लीजिए। फिर आगे के लिये भगवान है ।" बोले अनिलदेव।

"मगर मेरे पास एलाज कराने के लिये पर्याप्त पैसे नहीं बचे हैं, क्या हर्ज है ? परमेश्वर की मरजी होगी तो बच जाऊँगी। नही बची, आप तो इस घर को देखियेगा। देखिये, उनकी प्रयोगशाला का पूरा-पूरा ध्यान रखियेगा। हिंदुस्तान के लोग बड़े गिरे हुए है । यहाँ कला की प्रतिष्ठा नहीं होती। कला और कलाकार की प्रतिष्ठा रूस और इंग्लैंड वाले करते हैं। पिछले वर्ष जब वे शेक्सपीयर के गाँव से लौटे थे तो बतला रहे थे, वहाँ जिस कमरे में बैठ कर शेक्सपीयर लिखा करते थे, उस कमरे के सामान को

वहाँ वालों ने समाज और राष्ट्र की अमूल्य निधि समझ कर वैसे ही सुरक्षित रखा है। वहाँ एक बड़ा-सा होटल है। होटल के कमरों का नाम उनकी रचनाओं के नाम पर है। एक दो का नाम उन्होंने 'ऐज यू लाइक इट' और "हैमलेट" बतलाया था। हिंदुस्तान में तो लोग ऐसे हैं कि कलाकार की स्मृति बचावेंगे क्या कि यदि उसका घर वीरान पावें तो उस पर हल चलवा दें।" बोली अभिरामा। ऐसे बोली कि लगा वह क्रोध में हो।

"आप पैसे की क्या चिंता करती है। चल कर दिखलाइये भी तो।" अनिलदेव बोले। मगर उनकी बात पर बिना ध्यान दिये अभिरामा एक ही साँस में बोलती गई, "देखिये न, यहाँ के प्रकाशक भी कैसे हैं! उनके चित्रों का संग्रह चार वर्ष से पड़ा है। अजब नही, बक्स में पड़े-पड़े उसमें दीमक लग रहे हों। कोई प्रकाशक प्रकाशित करने को तैयार नही। वे तो किसी को दिखलाने नहीं जाते थे। मैंने बहुत ही प्रेरित किया तो ले गये और निराश होकर लौट भी आये। मुझे बहुत दुःख हुआ। बेकार उस आत्मा को मैंने कष्ट पहुँचाया। प्रकाशको ने कहा, "यह चीज बाजार के लायक नही है। हम इस पर आपको पुरस्कार क्या दें, प्रकाशित भी नही कर सकेंगे। जानते है, उस संग्रह में कैसे-कैसे चित्र है....।" इस प्रकार बोलने के सिलसिले में एक झोके के साथ वह उठने लगी, मगर अनिलदेव ने उन्हें मना करते हुए कहा, "नही, आप सोये रहिये। उठने से छाती पर जोर पहुँचेगा। मै आपकी बाते ध्यान से सुन रहा हूँ।" अभिरामा तमतमा रही थी, एक अज्ञात क्रोध से। वह बोलने लगी, "उस संग्रह में किसी कांग्रेसी नेता के बाल्यकाल से लेकर आज तक के चित्रों का संकलन नही है। उसमें है हिंदुस्तान का सच्चा चित्र। उसमें महलों की रंग-रश्मि का चित्रण नहीं, उसमें अपना वक्षस्थल उभार कर लेटी सुन्दरी का चित्र नही, उसमें उन कुटियों की तस्वीर है, जिसमें दीन-हीन मानव वर्ग निवास करता है, जिनकी मानवता पूंजीपतियों के नाम पर रोती रहती हैं। उसमें तस्वीर है, प्लैटफॉर्म पर गाड़ी रुकी है, भिखारी पैसे मांग रहा है, फर्स्ट क्लास में बैठे बाबू उसे डाँट रहे हैं। उसमें वह चित्र है, शहर के फुटपाथ पर दो भिखारी छोकड़े

रात्रि की निस्तब्धता में कंकड़ीली भूमि पर लेटे हैं। बगल में कुत्ता भी सोया है, कभी-कभी वह अपनी दुम झाड़ता है तो उन छोकड़ों का मुख धूल से भर जाता है। उसमें तस्वीर है, एक किरानी की। उसका छै साल का बच्चा घर पर बुखार से तड़प रहा है। वह शनिवार को साहब से छुट्टी मांग रहा है कि वह सोमवार को दफ्तर न आ सकेगा, कारण बच्चे को अस्पताल ले जाना है। और छुट्टी मंजूर करने के पहले साहब कहते है, 'कल संडे है कल सबेरे दफ्तर आ जाना; पेंडिंग काम हो जाना चाहिये। इसके आगे कुछ सुनने को तैयार नहीं,' उस संग्रह में चित्र है एक धनी के लड़के का जो अंगूर और संतरे को सड़ा कह कह कर नाले मे फेंक रहा है और एक चपरासी के लड़के का, जो नाले में गिरते हुए अंगूरों को देख कर बार-बार बाप का कुरता खीच रहा है, मानों वह नाले में गिरने वाले अंगूरों को खाकर भी अंगूर खाने का शौक मिटाना चाहता है।"

इतना कह लेने के बाद वह रुकी मानों अभी और कुछ कहना रह गया है कि एकाएक उसके मुख से चीख निकली, "आह. . .।" और वह हाथ पैर शिथिल कर छटपटाने लगी। अनिलदेव से रहा न गया। उन्होंने चाहा, सर सहला देवें, ताकि कुछ आराम मिले, मगर सर पर हाथ रखते ही अभिरामा बोली, "छोड़िये, इससे और सेनसेशन पैदा हो जावेगा। छोड़िये न. . . .।" इस प्रकार दस मिनट वह अचेतावस्था में पड़ी रही, अनिलदेव से कुछ कहा न गया, मगर अभिरामा की इस दयनीय दशा पर उन्हें वेदना अवश्य हो रही थी। होश आने पर अभिरामा ने कहा, "आप बुरा न मान लीजिये, अनिल जी, मैं आपसे सच कह रही हूँ। उस वक्त मैंने आपको. अपना सर इसीलिये न सहलाने दिया कि मुझे सेनसेशन हो जाता। ये हिंदुस्तान है न, इंगलैंड नहीं। आप तो इंगलैंड से पढ़ आये हैं। वहाँ तो परायी नारी का बदन स्पर्श कर देना इतना बुरा नही मानते जितना यहाँ माना जाता है। मगर हम हिंदुस्तान में हैं। आप चाहे जिस भाव से बदन स्पर्श करते, मगर भाव को आत्मा समझ सकती है, रक्त और उसकी संचालन-क्रिया नहीं। यौन-वृत्ति तो सब में है, उसे कोई कब असत्य कहेगा।"

अनिलदेव चुप रहे। अभिरामा बोली, "आपको इसमें सीरियस होने की कोई आवश्यकता नहीं। मैंने ठीक ही तो कहा है। मगर एक गलती अवश्य हुई। भारतीय नारी इतना स्पष्ट होकर कहाँ बोलती है। जिस आदर्श को लेकर मैंने आपको अपना सर न सहलाने दिया उसी प्रकार मुझे अपनी वाणी पर भी तो एक आवरण रखना चाहिये था, क्यों?" अनिलदेव ने फिर कुछ न कहा। धीरे-धीरे अभिरामा का दर्द उस समय के लिये दूर हो गया और वह कुछ खुश दीख पड़ी। वार्त्तालाप के क्रम में दो चार बार वह इस प्रकार ठहाका लगा कर हँसी कि ऐसी हँसी पहले कभी हँसी नही थी। अनिलदेव ने तब बड़े ही संयत स्वर में कहा, "आप अभी मेरे साथ चलिये। एक बार डाक्टर हेमचन्द्र से दिखला ही लेना श्रेष्ठ होगा। इसमें असावधानी करना मूर्खता होगी।"

"आप मुझे जीने के लिये जीवित रखना चाहते है तो मै अवश्य चलूंगी।" बोली अभिरामा और वह उसी दिन अनिलदेव के साथ उनके घर पर पहुँची। डा० हेमचन्द्र अभी कही गये थे, सो प्रतीक्षा की जाने लगी।

(२०)

थियेटर का काम छोड़ने के बाद यशोविजय के बौद्धिक दृष्टिकोण की रूप-रेखा और भी बदल गई। वह खुल कर डकैती करने लगा, खून करने लगा, उसके सर पर खून चढ़ गया। वह हीरे की दूकान पर खड़ा होता। देखता कोई धनवान पुरुष हीरा, रत्नादि खरीद रहा है। वह जब खरीद कर दूकान की सीढ़ी से नीचे उतरता तो उनका पीछा करता और उस हीरे को प्राप्त करने के लिये उसे रिवाल्वर भी चलाना पड़ता तो चलाता था, निश्चिन्त होकर। जुए की भीड़ में कभी अपने को जनता, कभी दारोगा और कभी सी० आई० डी० इंसपेक्टर बतलाता था। वहाँ भी उसे खासी आमदनी हो जाती। अब वह बिना जरूरत के दस कदम भी पैदल नहीं चलता। वह बराबर टैक्सी पर चलता था। हजार दो हजार रुपये बराबर जेब में होते। इंगलिश होटल में खाना खाता, मिस लोग खाना खिलातीं, जीन और हैवार्डस की बोतलें पिलाती थीं, मगर यशोविजय

व्यभिचार नहीं करता था। खाने-पीने की वस्तुओं का मूल्य चुकाता और चल देता था। हाँ, अब यदि कही कोई गरीब नौकरी ढूढ़ते मिलता तो उसे सौ पचास रुपये देकर कहता, "संसार के पूजीपति बड़े निर्दयी है। तुम अपने लहू को उनके लिये पसीना करने आये हो, मगर महीना भर दौड़ोगे, तब शायद तुम्हें अपनी गुलामी देंगे। लो ये पैसे, और इतमीनान से काम ढूंढ़ो। घबड़ाने की आवश्यकता नही। यह जिंदगी की बैलगाड़ी जैसे भी चले, चलानी ही होगी। थक कर बैठ न जाओ।" कही कोई हट्टा-कट्टा भिक्षुक मिलता तो उसे दस-पॉच रुपये देकर कहता "शरीर से अच्छे हो। अपनी योग्यतानुसार कोई एक काम खोज लो। किसी के आगे हाथ न फैलाया करो।" कोई मजदूर मिलता वस्त्रहीन तो उसे कुरते के लिये पैसे दे देता था। कहता था, "जिंदगी की चक्की चलती ही रहेगी, क्या करना है। तुम भगवान होकर भी अभागे हो। दिन भर मर कर कमाते हो, तुम्हारे पैसों से पूजीपतियों का श्रृंगार होता है, और तुम नंगे रहते हो, भूखे रहते हो। घबड़ाओ नहीं; हिंदुस्तान की छाती में एक भयानक आग सुलग रही है। तुम बराबर और भविष्य में ऐसे ही न रहोगे।" किसी निपंगु भिक्षुक से भेंट होती, जिसका सारा बदन घाव से भरा होता, जिसके हाथ-पाँव कटे होते, उससे कहता, "देश में ऐसे आदमी की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक आदमी अपनी ही कमाई खाने का अधिकारी है। तुम राष्ट्र की प्रगति के वाधक हो। जिंदगी की लालच सबों को होती है, मगर अब तुम्हें अपनी जिंदगी की लालच छोड़ देनी चाहिये।" और एकांत मौका देख कर उसे अपने रिवाल्वर का शिकार बना देता था। वह केवल कलकत्ता टाउन में ही नही, बल्कि वहाँ से अन्य स्थलों में जाकर भी ऐसा किया करता था। वह किसी बहुमूल्य परिधान-धारिणी नारी की ओर देखता तो लगता जैसे उसे निगल जायेगा। उसका हाथ बारबार कोट की जेब में जाकर रिवाल्वर से टकराने लग जाता। अस्तु!

बम्बई एक्सप्रेस पूरे रफ्तार के साथ रेल की पटरियों को हिलाती कँपाती चली जा रही थी। डब्बे के बाहर चारों ओर भयानकता का

साम्राज्य था। लाइन के आस-पास खाइयाँ थीं ; यदि ट्रेन उलट जाये तो एक यात्री भी बचने का नहीं ; बहुत समीप से शेर और चीते की आँखें जुगनू की भाँति चमकती दीखती थीं। भादो की काली महारात्रि में हाथ भी देखना असम्भव था। हवा का झोका खिड़कियों से ट्रेन में प्रवेश करता तो रोमांच हो आता था। इसी समय एक फर्स्ट क्लास के डब्बे को ध्यान-पूर्वक देखिये। पंखा बंद है। बाकी सभी वर्थ खाली है। केवल एक नारी है जो वर्थ पर लेटो कोई पुस्तक पढ़ रही है। उसने पतलून और ऊनी स्वेटर पहन रखा है। बायें हाथ की कलाई में कम-से-कम दो सौ रुपये की घड़ी है। बदन बड़ा ही स्वस्थ, कसा और आकर्षक है। युवती और कमसीन भी लगती है। इसी समय सामने का फाटक खुला और कोई पुरुष सूट-बूट लगाये भीतर प्रवेश करने लगा। किताब पढ़ती हुई नारी ने चौक कर उसकी ओर देखा, है, इस चलती एक्सप्रेस में कौन आ गया भीतर ! तब तक पुरुष उसके सामने के वर्थ पर आकर बैठ गया। नारी ने सकपका कर पूछा, "आप कौन है, इस समय चलती ट्रेन में अंदर कैसे आ गये ?" पुरुष ने उत्तर दिया, "आपको अकेली देख कर आना पड़ा। आप इतमिनान रखिये। आप ही की तरह मै मनुष्य हूँ, मुझसे आतंकित होने की कोई आवश्यकता नही ; मै चुपचाप बैठा रहूँगा।" नारी ने घबड़ा कर कहा, "तुम हो... अरे तुम....तुम य...शो.वि.ज.य। तुम इतनी रात को...चलती गाड़ी में...कलकत्ते से...यहाँ कैसे ..?" पुरुष बोला, "दीपमाला तुम मुझे इतनी आसानी से पहचान जाओगी, मैने नही सोचा था। पहले यह तो बतलाओ, तुम इधर कहाँ जा रही हो ?" दीपमाला बोली, "बम्बई"। यशोविजय ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा, "बम्बई, बम्बई क्या करने ? क्या कोई थियेटर के कार्यवश ?" दीपमाला ने उदास होकर कहा, "नही, थियेटर का काम अब छोड़ दिया है। डायरेक्टर और सेठ से सैद्धान्तिक मतभेद हो जाने के कारण वहाँ न रह सकी। अब जा रही हूँ बम्बई। किसी फिल्म कम्पनी में रह जाऊँगी।" यशोविजय् ने कहा, "बम्बई जाते-जाते नौकरी थोड़े ही मिल जायेगी। साथ में रुपये

ले जा रही हो न ?" दीपमाला वर्थ से उठ कर बैठ गई और बोली, "हाँ, इस वक्त मेरे पास पचहत्तर हजार रुपये नगद हैं। साथ ही मैं समझती हूँ, मेरे जेवरों का दाम भी पचास हजार से कम न होगा।" इस पर यशोविजय विचित्र ढंग से मुस्कुरा कर बोला, "तो फिर क्या कहने हैं, नौकरी अभी न भी मिले तो एक फ्लैट किराये का लेकर कुछ दिन खा सकती हो। कोई पक्का कलाकार बिना ठाट-वाट के जावे तो डायरेक्टर उसकी उतनी इज्जत कहाँ करेगा, जितनी तुम्हारी....।" दीपमाला को यह बुरा लगा, उसने बात काट कर कहा, "क्या समझते हो मैं कलाकार नहीं ?" "तुम जैसे लोग भी अपने को कलाकार समझने का दावा करते हैं तो क्षोभ होता है। तुम और कलाकार में वही अंतर है जो मिल-मालिक और मजदूर में। सच्चा कलाकार इतना ठाट कब पसंद करता है, यह क्या पढ़ रही हो देखें....।" कहते-कहते यशोविजय ने उसके हाथ की पुस्तक छीन ली। लेखक और पुस्तक का नाम पढ़ते ही घृणा से वह भर उठा। उसने कहा, "छिः यही पुस्तक पढ़ती हो। इससे अच्छा होता, कोकशास्त्र पढ़ो। साहित्य के नाम पर यह लेखक तो पैसे कमाता है, और तुम्हारी पुरानी आदत गई नहीं ? आज भी गंदे उपन्यास पढ़ रही हो ?" दीपमाला ने आँखें खोल कर कहा, "तुम्हारा अब मुझ पर कौन-सा दावा है जो इस प्रकार बोलते हो। मुझे यही अच्छा लगता है, तुम क्या करोगे ? तुम इस लेखक से जलते क्यों हो ?"

"जलता हूँ इसलिये दीपमाला, कि हिंदुस्तान की आस्था इस समय बदली जा रही है। उसके हृदय में ऐसे साहित्य के लिये स्थान बनाना घोर पाप है। मैं मानता हूँ, जनता इस लेखक की पुस्तकें बड़े चाव से पढ़ती है, मगर लेखक जनता को गिरा रहा है। जनता का नैतिक स्तर खराब कर रहा है। साहित्य में कौन-सी बात कब श्लील और अश्लील हो जाती है तुम नहीं समझ सकती। मैं खुले शब्दों में कहता हूँ। तुम्हारे पास इतना दिमाग नहीं कि तुम समझ सको। हिंदुस्तान चाहता है देश के आज ऐसे लेखक रसातल को पहुँच जावें, उनका नामोनिशान मिट जाये, वे

भूखों तड़प-तड़प कर मर जायें। अगर ऐसा लेखक समाज से सुख और पैसे की माँग करता है तो वह अनुचित माँग करता है, वह जीकर भी नर्क की जिंदगी पाने का अधिकारी है। हमें कोई रंडीबाजी सिखलावे, और हमसे अपने घर का खर्च मांगे तो यह कब सम्भव होगा ? आज का हिंदुस्तान फ्रांस के रोम्या-रोलाँ को खोज रहा है, आज भारत-भूमि की आँखें स्टालिन की जीवनी के लेखक वारब्यूस को खोज रही है, आज का हिंदुस्तान अपना खून खौला-खौला कर जर्मनी के स्टीफेन ज्विग को बुला रहा है, आज देश में मैक्सिम गोर्की जैसे साहित्य–कलाकार की नितान्त आवश्यकता है जिसने 'मदर' उपन्यास लिख कर रूस की राजनीतिक आस्था बदल दी। सामन्त की आज्ञा थी, गोर्की को गोली से उड़ा दो। गोर्की देश और नगर में मारा-मारा फिरता था, आज की रात मास्को में बीती, तो कल की सुबह वल्गेरिया में होती थी। वह जनता का प्रतिनिधि था। उसने जो कुछ भी किया जनता और समाज की भलाई के लिये। जनता ने उसके संकेतों का अनुसरण किया। तुम छोकड़ी हो, तुम उस कलम के धनी का अस्तित्व क्या जानोगी। अरे, आज 'मदर' का दो 'चैपटर' साइक्लो-स्टाइल करके बँटवा दिया और कल सुबह क्रान्ति मच गई. . . .लेखक हो तो ऐसा ! तुम. . . ।" दीपमाला आश्चर्य से उसे देख रही थी। यशोविजय बोल रहा था, "तुम. . . .तुम्हारे जैसे वैभव-विलास के समथर्क हिंदुस्तान को क्या समझेंगे। दीपमाला, हिंदुस्तान की आत्मा कराह-कराह कर एलेक्सी, टालस्टाय, और शोलोखोफ, अमेरिका के अप्टन सिनक्लेयर, इंगलैंड के वरनार्ड शॉ और एच० जी० वेल्स आदि लेखकों को पुकार रहा है जिन्होंने साम्राज्यवाद और पूजीवाद के विरुद्ध जनता को खड़ा किया . . .जनता को तुम क्या समझती हो. . .जनता मूर्ख है, जनता धीरे-धीरे सब समझ रही है। आज से सौ वेर्ष के बाद का हिंदुस्तान ऐसा ही नहीं रहेगा, यहाँ किसी भी राजनीतिक योगी की माला का प्रभाव न रहेगा. न कोई दल रहेगा, न कोई पार्टी रहेगी. . . .।" बोलते-बोलते एक बार बीच ही में रुक कर यशोविजय ने बड़े आवेश में कहा, "दीमपाला ?"

दीपमाला ने पूछा, "क्या कहते हो ?"

"मुझे तुम अपने रुपये और जेवर दे दो।"

"क्यों दे दूं, मुझे बम्बई जाना है। तुम ऐसा क्यों कहते हो ?"

"नहीं दोगी, तो मैं अपना बल प्रयोग करूँगा।"

"मुझे विश्वास नहीं, तुम अपना बल प्रयोग कर मेरी जिंदगी खराब करोगे; तुम अपनी शक्ति से मुझे और मेरी कला का विनाश करोगे। और तुम आज से नहीं, मेरी अवस्था तीस साल की है; तुम मुझे सोलह साल की अवस्था से प्यार करते आये हो....?" बहुत कोमल और दीन बन कर दीपमाला ने कहा।

"मैंने कला और कलाकार की परिभाषा बतला दी है। न तुम कलाकार हो और न तुम्हारे पास कला की कमाई है। स्टेज पर गंदे गीत और नग्न प्रदर्शन का मूल्य ही क्या ? और मैं तुम्हें क्यों प्यार करूँगा ? हाँ, हो सकता है, कभी प्यार करता होऊँगा, तो वह तब का सत्य था, आज की घटना आज का सत्य होगी। मनुष्य का जब जो रूप है, वही उसका सत्य मानो। और तुमने भी मुझे कहाँ प्यार किया ? शादी हो जाने के पहले मेरे बनाये हुए चित्र तुम्हारे नाम से प्रकाशित होते रहे, तुम्हारी ख्याति होती रही और तुम मुझे अपनी घृणित मुस्कान दे देकर मुझे बहला रही थी। शादी हो जाने के बाद तुम गिरगिट की भाँति बदल गई। तुम्हें मुझसे बातें करने की फुर्सत नहीं मिलती थी। तुममें केवल विलासिता थी, तुम्हारे प्रेम की बातें वासना की भूमिका थीं। शादी हो जाने के बाद तुम्हारी वह आवश्यकता पूरी हो गई। मैं तो कला की साधना कर रहा था। अपनी आत्मा से पूछो, मैंने एक बार भी....।" बोलते-बोलते यशोविजय का स्वर अधिक भारी हो आया। उसकी आँखें लाल हो आयीं। उसने उठकर दीपमाला का गला दबोचना चाहा। दीपमाला ने भयभीत होकर अपना सर पीछे की ओर करते हुए कहा, "ओह, तुम मुझे ऐसे क्यों करते हो ? मैं जानती हूँ, मैंने उस दिन टी-पार्टी में नौकर को मारा था, इसका तुम्हें बहुत दुःख है।"

"हाँ, यह सत्य भी निरा सत्य है। तुमने उस नौकर को क्या समझ कर रखा है, उसमें आत्माभिमान की भावना नहीं ? पैसे से मिहनत खरीदी जा सकती है, व्यक्तित्व नहीं। तुम क्या समझती हो, तुम्हारा नौकर तुम्हें मन से 'मालकिन' कहता है, कदापि नहीं। जिस समय वह तुम्हें 'मालकिन' कहता है, उस समय उसकी समस्त विवशता क्या आविर्भूत नहीं हो उठती ? यदि ऐसी बात नहीं तो जिस समय तुमने उसे मारने के लिये थप्पड़ चलाया था, उस समय वह भी अपने जूते खोल लेता....।" बोला यशोविजय, और उठ कर उसने दीपमाला को पकड़ कर झकझोर दिया। दीपमाला ने देखा, अब कोई उपाय नही तो उसने कहा, "तुम्हारी झिझक बतला रही है कि आज भी तुम मुझे चाहते हो। और मैं तो तुम्हारे लिये मिट ही गई। तुम्हारी स्मृति ने मुझे इतना पागल बना दिया कि ससुराल में मै अपने पति के प्यार का 'रेस्पौन्स' न कर सकी... उसने मुझे डाँटा, फटकारा, मुझसे असंतुष्ट हुआ, मुझ पर लाखों इल्जाम लगाये और मुझे अपनी सारी प्रतिष्ठा खोकर पीहर और ससुराल दोनों का सहारा छोड़ना पड़ा, में थियेट्रिकल कम्पनी में आकर भर्ती हो गई। और आज तुम भी..मै तो समझती हूँ, पैसे का बन्धन खुल जाता है, किन्तु प्यार का बन्धन....।"

यशोविजय ने बीच ही में बातं काट कर कहा, "प्यार की इससे सुन्दर कल्पना मै स्वयं कर लेता हूँ। तुम प्यार को क्या समझोगी। और जिसने प्यार का 'वैल्यू' नहीं किया, वह संसार में कला का 'वैल्यू' कभी कर ही नहीं सकता। शादी के पहले तुमने मुझसे प्यार जतलाया था, शादी के बाद देवर और ससुराल के अन्य रिश्तेदारों सें जतलाती होगी, पति ने इल्जाम लगाया सो गल्ती उसने क्या की ? और जो लड़की ऐसी होती है, उसका यही हाल होता है। मुझे इसका कोई दुःख नहीं।"

"मगर मेरी शादी के बाद दूसरे साल तो तुमने भी अपना व्याह कर लिया।" बोली दीपमाला। यशोविजय ने कहा, "तुम्हारे नाम पर मैं

कुंकुम लिये खड़ा ही क्यों रहता ? अमीर घर की लड़कियाँ ऐसी ही वेवफा होती हैं। पीछे मैंने हेडमास्टर की लड़की से शादी कर ली। मेरे बनाये चित्रादि उसे भी पसंद थे। शादी हो गई, वह मेरे साथ रही, कभी आन-बान शान की बात नहीं। मैंने घास पर चलने को कहा, तो वह काँटे पर चलने को तैयार रही है। और तुम्हारा स्वभाव तो शायद ऐसा ही रहा है कि यदि मैं मखमली चप्पल तुम्हें पहनाता तो चलने के लिये फूलों से भरा मार्ग भी खोजती। दीपमाला....?"

"क्या है, कहो न ?" दीपमाला ने डर कर पूछा। बम्बई एक्सप्रेस रफ्तार में शोर मचाती चली जा रही थी। पहिये की गड़गड़ाहट चारों ओर निनादित हो रही थी। यशोविजय ने कहा, "दीपमाला मैं प्यार को तिलांजलि देता हूँ। जनता भूखी मर रही है, इस समय उसे 'रोमांस' जगाने की फुर्सत नहीं। मुझे अपने जेवर और रुपये दे दो, जल्दी, समय नहीं है अब ?" और गोलियों से भरा रिवाल्वर उसने दीपमाला की छाती पर रख दिया। दीपमाला ने कहा, "ऐसा न करो, वरना ज़ंजीर खीच दूंगी।" यशोविजय ने उसी क्षण दीपमाला की पतली कलाइयाँ पूरी ताकत से मरोड़ दी। दीपमाला चीखने और चिल्लाने लगी। यशोविजय उसे समझाता रहा। दीपमाला ने बहुत उपाय करने पर जब उसकी एक न मानी तो न जानें, यशोविजय के हाथ से रिवाल्वर का घोड़ा कैसे दब गया और दीपमाला की छाती से रक्त की धारा प्रवाहित हो चली। वह आह के साथ वर्थ पर गिर पड़ी। खाइयों से घिरे मार्ग पर बम्बई एक्सप्रेस चलती जा रही है। अमावश की काली रात जाग रही थी।

(२१)

शिमला की पहाड़ी धरा चीड़, ओक और देवदार के सुन्दर वृक्षों से अति सुरम्य लगती है। मैं यहाँ यह स्पष्ट कर दूं कि अभिरामा के हृदय में जो दर्द था, वह डाक्टरों की जाँच के पश्चात् फेफड़ों का एक भयानक रोग प्रमाणित हुआ और उनलोगों ने सलाह दी कि उन्हें शीघ्र ही किसी पहाड़ी स्थल पर ले जाना चाहिये, वरना फल अशुभ होगा। अभिरामा से अधिक

अनिलदेव घबड़ाये । वनजा ने यह सलाह दी कि न्यूज एजेन्सी यदि छुट्टी दे तो वे उन्हें लेकर शिमला चले जायें। अनिलदेव ने ऐसा ही किया। न्यूज एजेन्सी से उन्हें छुट्टी और शिमला जाने के लिये पाँच आदमी का पास भी मिल गया। उसके चौथे दिन ही सभी शिमला जाने को तैयार हो गये । डाक्टर हेमचन्द्र ने अनिलदेव को बुला कर कहा, "मीनाक्षी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं, यदि उसे भी अपने साथ लेते जायें तो मैं आपका बड़ा ऋणी होऊँगा।" इस पर अनिलदेव ने कोई एतराज न किया और मीनाक्षी भी साथ हो ली। उन्होंने वनजा को भी चलने के लिये कहा, मगर एम० ए० की परीक्षा सिर पर सवार थी। अतः वह न जा सकी। मीनाक्षी अभिरामा और अनिलदेव शिमला चले आये ।

शिमला में वही परदेशी आकर कुछ रोज ठहर सकता है जिसके पास यथेष्ट पैसे हों, वरना यहाँ गरीब मुसाफिर का गुजारा होना मुश्किल है। जाड़ा के दिनों में यहाँ वर्फ पड़ती है। प्राकृतिक दृश्यों की यहाँ कमी नही। सरकारी ऑफिसरों के रंग-विरंग के बँगले हैं। तपेदिक और अन्य हृदय की बीमारी वाले रोगी के लिये यह स्थान बड़ा ही लाभदायक है। अनिलदेव अपने ही यहाँ से काफी दवा लेते आये थे। खाने-पीने का परहेज भी डाक्टर से पूछ लिया था। कोई बेचैनी की बात नहीं थी। पहाड़ी के पास इनलोगों ने तम्बुओं का डेरा बना लिया था। आस-पास खजूर और नारियल के पेड़, जंगली लताओं की झुरमुटें, पहाड़ी पर के सुनील जल के स्रोतों का सौन्दर्य, सन्ध्या समय नीड़ों में प्रवेश करने वाले पंछी के कलित कलरव, दार्जिलिंग की स्मृति दिलाने वाली स्वच्छ वायु के स्पन्दन ने एक ही माह में अभिरामा के स्वास्थ्य को बदल दिया। दर्द का आवेग कम था। उसके गाल काफी भर गये,उनसे अंगूरी टपकने लगी। मगर उसकी आन्तरिक प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बदलती जा रही थी। कला और साहित्य की चर्चा करते समय उसे मीनाक्षी से झड़प तो हो ही जाती, अब ऐसा जान पड़ने लगा कि उसे मीनाक्षी से केवल सैद्धान्तिक मतभेद ही नहीं, प्रत्युत आन्तरिक द्वेष भी है। मगर वह कभी ऐसा

स्वीकार नहीं करती। सोने के लिये तम्बू का ही घर-सा बन गया था। चार कमरे थे। एक में भोजन बनता और नौकर सोता था। बाकी तीन में तीनों आदमी रहते थे। मीनाक्षी ने शिमला जाते समय मार्ग म ही एक ताजी कुत्ता खरीद लिया था। शाम के समय जब वह टहलने निकलती तो कुत्ते के गले का चेन उसके हाथ में होता और कुत्ता उसके पीछे-पीछे चलता था। पहाड़ी की पथरीली पगडंडी पर चलते समय अभिरामा कुत्ते और मीनाक्षी की ओर इस प्रकार देखती जैसे वह कुत्ता और मीनाक्षी का यह नया फैशन उसे पसंद नही। जब कभी किसी वाद-विवाद में वह थक जाती तो अनिलदेव को पुकार कर कहती, "देखिये, इन्हें बी० ए० तक पढ़ने का घमंड खाये जा रहा है। तब से मेरे साथ निरर्थक बहस कर रही हैं। कुत्ते का चेन हाथ में पकड़ कर टहलने से दुनिया की सारी बातें मालूम नहीं हो जातीं।" "सो तो सब सही है। मगर यह झगड़ा आप दोनों के बीच कहा है। मै नही बोलूगा। हाँ, मुझे इतना अवश्य कहना है कि आप दोनों का स्वास्थ्य ठीक नही, अधिक से अधिक विश्राम का ध्यान रखें।" यों ही मुस्कुरा कर अनिलदेव कह देते। अभिरामा दाँत पीस कर रह जाती। मीनाक्षी को इसके लिये कोई दुःख न होता था। वह भी मुस्करा पड़ती और कहती, "आपकी दरख्वास्त पर जीजा ने कोई विचार न किया।"

सितम्बर का महीना था। हल्की मीठी हवा बह रही थी। रात्रि की बेला, ग्यारह बज रहे थे। सभी अपने-अपने टेण्ट में सो रहे थे। चाँदनी रात थी। सप्तमी का धवल चन्द्रमा आकाश से झाँक रहा था। उसके नीचे श्वेत बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े पूरब से पश्चिम की ओर जा रहे थे। इसी समय अभिरामा अपने पलंग से उठी और सिरहाने पड़ी कुर्सी को खींचकर बाहर ले आयी। बीच में मीनाक्षी का टेण्ट और उसके बाद तनिक हट कर अनिलदेव का था। अभिरामा ने अनिलदेव के टेण्ट की ओर एक बार देखा और फिर कुर्सी पर वह बैठ गई। उसने काली साड़ी पहनी थी; पैरों में मखमली स्लीपर था। बाल पूर्णतया सजे-संवारे थे। सौन्दर्य जी खोल कर निरख रहा था। वह कुर्सी पर इस प्रकार बैठी जैसे दूर की मंजिल

तय कर आयी हो। जैसे थकावट ने उस पर कब्जा कर लिया हो, और बैठ कर उसने एक दीर्घ निःश्वास जोरों के साथ छोड़ा। दूर, बहुत दूर जंगली जानवरों की धीमी आवाज सुनाई दे रही थी। और भी बहुत से लोगों के टेण्ट थोड़ी-थोड़ी दूर पर दृष्टिगोचर हो रहे थे। मीनाक्षी का कुत्ता टेण्ट के खूटे से बँधा इधर से उधर कर रहा था। अभिरामा को देख कर वह एक बार भूक पड़ा, मगर पीछे शांत हो गया। अभिरामा के बैठ जाने के बाद उसकी भाव-भंगिमा ऐसी हुई जैसे बहुत कुछ वह एकाएक सोचने लगी हो। करीब बीस मिनट यू ही बैठ लेने के बाद वह कुर्सी छोड़ कर उठी और अनिलदेव के टेण्ट की ओर बढ़ी। वह धीरे-धीरे बढ़ रही थी दबे पाँव। जैसे वह चोरी करने जा रही हो। उसके टेण्ट के पीछे वह टेन्ट था, जिसमें नौकर सोता और रसोई बनती थी। वह डर कर पीछे की ओर भी देखती और आगे भी। किसी प्रकार चल कर जब वह मीनाक्षी के द्वार पर पहुँची तो उसे ऐसा लगा कि मीनाक्षी उठ कर बाहर आ रही है और वह डर कर बहुत शीघ्र फिर कुर्सी पर आकर बैठ गई। उसका कलेजा धक-धक करने लगा था। उसके चेहरे पर एक अज्ञात-सी परेशानी व्याप्त हो गई। मगर बात ऐसी थी कहाँ? मीनाक्षी ने तो करवट बदला था। वह आध घंटा तक कुर्सी पर बैठी रही चाँद की ओर देखती अपने भावों को सुलझाती रही, पहाड़ी के नीचे वन-प्रदेश की लोनी लतिकाओं को कवयित्री की दृष्टि से निरखती रही, परन्तु मीनाक्षी अपने टेण्ट से बाहर न निकली, उसकी कोई पद-चाप तक न सुनाई पड़ी। तो उसने सोचा, वह केवल भयमात्र था। उसने साहस किया, वह चली पुनः अनिलदेव के टेण्ट की ओर। इस बार न किसी स्वर ने, न नौकर ने, न कुत्ते ने और न मीनाक्षी ने ही कोई आपत्ति की। बल्कि वह स्वयं अनिलदेव के टेण्ट के द्वार पर पहुँची और उन्हें सोते देख कर दो मिनट ठिठक कर खड़ी रही और झटपट चोरिनी की भाँति भाग आयी जैसे अनिलदेव के सिरहाने से कुछ लेकर भाग रही हो और उनकी नींद टूट गई हो। वह फिर कुर्सी पर आकर बैठ गई। इस बार वह पहले की अपेक्षा अधिक परेशान और थक गई थी। उसके ललाट पर पसीना की

बूंदें उभर आयी थीं। उसके मुख से धीमे स्वर, में निकला, "ओह...मैं यह सब क्या कर दूंगी...कुछ अच्छा न होगा...।" और कुछ मिनट बाद अभिरामा ने अनुभव किया कि वह हाँफ रही है। उसकी स्वांस की गति तेज हो गई है। इस प्रकार आध घंटा समय और लगा वह कई बार कुर्सी से उठी और बैठ गई। हवा के हल्के झोंके से उसके माथे पर की साड़ी और आँचल हिल रहा था। कभी-कभी उसके बालों में बँधा लाल फीता भी जड़ होकर जीवधारी की भाँति सिहर उठता। अभिरामा भी कभी-कभी 'सी सी' कर उठती थी। फिर, न जानें, उसने क्या सोचा, उठकर चली और इस बार पूर्ण निर्भीक होकर अनिलदेव के टेण्ट में प्रवेश कर गई। हाँ, प्रवेश कर जाने के बाद भी एक बार उसके ख्याल में आया था कि वह अब भी लौट जा सकती है, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है, मगर उसने केवल ऐसा सोचा—कर न सकी। अनिलदेव की आँखें बंद थीं। टेबुल पर लालटेन धीमा प्रकाश देता हुआ जल रहा था। अनिलदेव के सिरहाने बड़ा टौर्च रखा था। अभिरामा के होंठ एक बार हिले और उसने पुकारा, "अनिल जी...?" अनिलदेव एक ही बार में जग गये। यहाँ एक बार थोड़ा-सा अभिरामा को यह पश्चाताप हुआ कि वे एक ही बार में क्यों जग गये ? यदि दो-तीन बार आवाज पर जग सकते तो संभव था कि बीच में उसके विचारों में परिवर्त्तन होता, मनुष्य सदा एक-सा नही रहता। हो सकता है कि तीन बार पुकारने के पहले ही वह टेण्ट से बाहर निकल जाती। मगर अब तो वह स्थिति कल्पनातीत हो चुकी थी। अनिलदेव ने जग कर अभिरामा को देखा और पूछा, "क्या है, इस समय क्यों ज़गीं, क्या कोई तकलीफ है ?" इस पर अभिरामा छुई-मुई-सी होकर बोली, "नहीं, तकलीफ काहे की।"

"तो फिर आपके इस वक्त मेरे पास आने का क्या कारण हुआ ?"

"इसका भी जवाब देना होगा मुझे ?"

"नहीं, इसमें मेरी सहानुभूति है, आप कुछ और न समझें। मैं जानता हूँ, भगवान ने आपको एक उच्च कोटि के कलाकार और भावुक की पत्नी

बनाया है। आपका हृदय बड़ा ही नाजुक होगा...?" बोले अनिलदेव और अभिरामा का मुख देखने लगे। अभिरामा ने कहा, "नहीं, कारण आपका पूछना और मेरा बतलाना इन दोनों में से एक काम भी मानव-प्रकृति और वर्त्तमान स्थिति के विरुद्ध की बात नहीं। परन्तु एक बात सुनिये न।"

"कहिये, मगर आप बैठ जाइये न।" कह कर अनिलदेव ने सामने की कुर्सी की ओर संकेत किया। मगर अभिरामा बोली, "ठीक है...।" अनिलदेव ने कहा, "नहीं, मैं खींच देता हूँ।" और उठने लगे, मगर "आप कष्ट न कीजिये' कह कर अभिरामा पलंग के पैताने पर बैठ गई। बैठते समय वह काफी सहम गई थी जैसें वह जान-बूझ कर उस भूमि पर बैठ गई हो जिसकी तह में चिनगारियाँ छिपी हैं। पैताने की ओर बैठ कर उसने अपनी साड़ी और बाल सम्हाला, तब बोली, "यदि मै अपने यहाँ आने का कारण आपसे 'अकारण' बतलाऊँ तो आप अपने मन में क्या सोचेंगे ?" इसका उत्तर देने के पहले पलंग पर से ही हाथ बढ़ा कर अनिलदेव लालटेन की रोशनी तेज करने लगे, किन्तु उन्हें रोक कर उसने कहा, "नही, ऐसा न कीजिये। नौकर यदि बाहर निकला तो मुझे यहाँ देख कर क्या समझेगा।" इस पर अनिलदेव ने अपना हाथ खीच लिया। अभिरामा ने कहा, "आपने मेरे प्रश्न का उत्तर न दिया।"

"आपका प्रश्न....।" बोलते-बोलते रुके अनिलदेब। अभिरामा बोली, "हाँ, मेरा प्रश्न जी ?

"आपका प्रश्न वैसे तो जटिल जान पड़ता है। मगर मेरा जो व्यक्तिगत विचार है उसे मैं कहे देता हूँ। और वह यह है कि म तो सोचूंगा कि इधर बहुत दिनों से आप अस्वस्थ्य रह रही है। शरीर में कष्ट है। मानसिक असुविधायें हैं। तबीयत खिन्न हुई होगी, यों ही उठ कर चली आयीं होगी।" बड़े ही धैर्यपूर्वक अनिलदेव ने कहा, परन्तु अभिरामा को ऐसा लगा, जैसे अब तक उनके पास जो कुछ भी अपना इतमीनान था, उसका ह्रास होना आरम्भ हो गया है। वह बोली, "मगर जानते हैं, आपके स्थान

पर यदि कोई दूसरा पुरुष होता तो वह क्या समझता...?...वह समझता, इस नारी ने अपने विचार को असंयत कर दिया है, न यह तट पर है और न नौका पर—जल में उतरती जा रही है।"

इसके लिये क्या करना है। अपना ही मन हमेशा एक-सा नहीं रहता। सभी लोग एक-से कैसे रहेंगे।" बोले अनिलदेव। इस प्रकार अभिरामा के प्रश्नों का वे कोई खास निचोड़ नही निकाल पाते थे। उनके बोलने के दूसरे ही क्षण बाद वह एक बार मुस्कुरा पड़ी। अनिलदेव ने चाहा, प्रसंग बदल दें। पूछा, "अपनी हालत कहिये, पीड़ा तो कुछ नही महसूस करतीं! भगवान करें, आप शीघ्र अच्छी हो जायें।"

"एक बात पूंछू आपसे ?" अभिरामा ने कहा। वे बोले, "कहिये।" अभिरामा ने पूछा, "मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि आज मैं बहुत सुन्दर लग रही हूँ, आज का मौसम, आज की प्रकृति मुझे सब सुहावनी लग रही है। इस वन-प्रदेश का एक-एक कण मेरे हृदय को उद्वेलित कर रहा है। क्या यह सच हो सकता है ?"

"स्वास्थ्य अच्छा रहने पर सुन्दर लगना स्वाभाविक है। और यहाँ की प्राकृतिक वस्तुएँ जो आपको बहुत सुहावनी प्रतीत हो रही है, यह आपकी प्रकृतिप्रियता है—आपके जन्मजात भावुक होने का एक ज्वलन्त प्रतीक है। मैं इसे असत्य कैसे कह दू ?" बड़े सम्हल कर बोले अनिलदेव। अभिरामा फिर मुस्कुरा पड़ी। उसने पूछा, "आपने कभी इस पर विचार किया क्या ?"

"मैं आपके स्वस्थ्य व दीर्घायु होने की कामना किया करता हूँ, आप पर कोई विचार नहीं।"

"आपके उत्तर ऐसे होते हैं जैसे किसी के अनावश्यक प्रश्न पर उसे टालना पड़ जाता है। मगर आप यह मेरे साथ अन्याय करते हैं। मेरे प्रश्नों का आपको यथोचित उत्तर देना चाहिये। मैं आपसे पूछती हूँ कि क्या मीनाक्षी का हाथ में कुत्ते का चेन पकड़ कर टहलने निकलना हमारी संस्कृति के अन्दर की वस्तु है ? और यदि नहीं है तो आप उसे मना क्यों

नहीं करते ? यह फैशन तो अंग्रेजों में है, कुछ क्रिश्चियन भी ऐसा करते हैं। ऐसी जवान हुई, विवाह हुआ होता तो दो बच्चे की माँ हुई होती, हर बात में दाँत दिखला कर हँसना, बदन पर से आँचल का सरका-सरका देना, यह सब क्या अच्छाई है ?" अभिरामा ने उनसे एक ही साँस में पूछा। अनिलदेव ने प्रतिष्ठा के भाव की रक्षा करते हुए कहा, "मैंने अभी न आपसे कहा है, अपना ही मन हमेशा एक-सा नही रहता सभी लोग एक-से कैसे रहेंगे। ये विचार, यह फैशन, आपके सिद्धान्त के परे है, मगर उसके नहीं। वह जो कुछ भी ठीक समझती है, करती है। और मैं उसे मना कैसे करूँ, उस पर मेरा अधिकार ही क्या है ?"

"नहीं, यह तो आपकी कमजोरी है। यदि आपको उसके बुरा-भला में बोलने का अधिकार नही तो साथ में इतनी दूर ले आने का भी अधिकार नहीं था। मैं जानती हूँ, उसके बाद आपका यह उत्तर हो सकता है।" "मेरा मन तो नही था, मैंने उसे डा० हेमचन्द्र को आज्ञा पर ही ले आया हूँ।" "मगर उसके बाद भी कारण है जिससे आपको नहीं ले आना चाहिये था। आप यह न समझ लेंगे जो मैं हूँ, वही मीनाक्षी भी है। समझी आपने मेरी बात ?" अभिरामा बोली।

"मै न समझ सका।"

"नहीं समझियेगा। आप तो समझते हैं, पागल है। यूंही जो मन में आता है बकती रहती है। वे भाग गये है, सबों को कहने का बहाना हो गया है—अभिरामा का मानसिक संतुलन ठीक नहीं। मगर एक दिन मेरी बातें याद कीजियेगा और वे पूर्ण याद नही पड़ेंगी—जिसके लिये आपको दुःख भी होगा।" बहुत गंभीर होकर वह बोली और फिर हँस पड़ी। उसने डर कर एक बार कहा, "अरे महापराध हो गया! जोरों से हँसी आ गई। कहीं मीनाक्षी जग गई तो बुरा हाल होगा। देखिये, आपके पैर पड़ती हूँ, यह कहना उसे मालूम न होने पावे। आपको मेरी सौगन्ध है, अब मैं चलती हूँ....।" कहती हुई अभिरामा उठी और जाने लगी। अनिलदेव ने कहा, "सुनिये तो।" मगर अभिरामा इतनी जल्द चली गई

जैसे उसने अनिलदेव का स्वर सुना ही नहीं। बाहर शीतल चाँदनी मुस्कुरा रही थी।

(२२)

चलती एक्सप्रेस के डब्बे में प्रवेश कर यशोविजय चाहे जिस जिस तरह भी हो, दीपमाला के पचहत्तर हजार रुपये और जेवर लेकर कूद तो गया, मगर इसके बाद उसे कुछ भी शान्ति मिल सकी, यह बात नहीं। इसका अर्थ यह नहीं कि एक्सप्रेस से कूदने के कारण उसे सख्त चोट वगैरह आ गई, बल्कि अगले स्टेशन पर जब ट्रेन रुकी तो दीपमाला अपने डब्बे में बेहोश पायी गई। उसका वस्त्र और वर्थ रक्त से भींग चुका था। रेलवे की ओर से उसे समीप के अस्पताल में ले जाया गया और उसे होश में ले आने की चेष्टा की जाने लगी। रिवाल्वर की गोली इस प्रकार नहीं लगी थी कि उसके प्राण निकल जाते। डाक्टरों को आशा थी कि वह बचा ली जायेगी। दो रोज के बाद उसे होश आया, उसने डाक्टरों और पुलिस अधिकारी से अपना नाम, पता बतलाया और यह भी कहा कि इसकी हत्या का प्रयत्न करने वाला उसका चिरपरिचित व्यक्ति है। वह उसके गिरफ्तार कराने में पूर्ण रूप से सहयोग देगी। पुलिस अधिकारियों को इससे आशातीत सान्त्वना मिली। वह अस्पताल में भर्ती रही और उसके जहरीले घाव को ठीक करने में वहाँ के लोग काफी संलग्न रहे। इधर आस-पास के इलाके में यशोविजय ने धूम मचा दी। आस-पास में नित्य ही दो एक रईस और जमीन्दार की हत्या होती, लाखों का माल लूट लिया जाता। नगर में तहलका मच रहा था। पुलिस वाले दंग हो रहे थे। जो कहता, "हमने अपराधी को भागते देखा है।" तो उसे दीपमाला के पास लाया जाता और उससे पूछा जाता कि अपराधी का डील-डौल, आकार-प्रकार कैसा था ?" उसके मुख से सब कुछ सुन लेने के बाद दीपमाला यही निर्णय देती कि अपराधी निस्सन्देह यशोविजय है। अपना निर्णय देते समय दीपमाला क्रोध से होंठ चबा लेती थी।

खैर, तो यहाँ दो सप्ताह बीत गये। यशोविजय साधारण आदमी नहीं। पत्र-पत्रिकाओं में दर्जनों बार उसके चित्र प्रकाशित हो चुके हैं, मगर उसके नीचे लिखा होता—"हमारे व्यंग चित्रकार यशोविजय।" मगर अब पुलिस और दीपमाला के प्रकोप से तीन दिन से निकलने लगा—"यह है अभियुक्त का फोटो। नाम यशोविजय।" इसके बाद उसके रूप-रंग की पूरी-पूरी हुलिया। यहाँ की पुलिस और खुफिया विभाग उसके पीछे पड़ चुका था। यशोविजय दिन में नदी के किनारे और रात जंगलों में बिताता। वह किस समय कहाँ रहेगा, कोई ठीक नहीं। वह बदन से दुर्बल और मजबूत दोनों है। कलाकार यशोविजय तो बड़ा ही कोमल और क्रान्तिकारी यशोविजय बहुत ही मजबूत। क्या मजाल कि लोहा भी उसके सर को फोड़ सके। एक जगह से कूद कर भागते समय उसके कन्धे पर पुलिस की गोली लगी जो बहुत ही मर्माहत घाव पैदा कर चुकी है। उससे चौबीस घंटे जरा-जरा रक्त निकलता रहता है—पीड़ा होती रहती है। फिर भी वह सभी कष्टों को झेलता हुआ जी रहा है, अपना कर्त्तव्य कर रहा है।

सितम्बर की आधी रात। नदी का किनारा, श्मसान घाट। कहते हैं, यहाँ रात्रि में भूत हँसते-खेलते हैं, चुड़ैल और डायनें नृत्य करती और गाती है। पानी के धक्के लगने पर दूर पर कछार के कट-कट कर गिरने का स्वर गूंज रहा है। चारों ओर सूनसान, सन्नाटा छाया हुआ है। अभी-अभी शाम को ही शायद मुर्दा जला था, चिर्राइन गंध चारों तरफ हवा के साथ टहल रही है। बहुत दूर तक पेड़-पौधे कुछ भी नजर नहीं आते। अन्धेरा है, घोर अन्धकार। कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे संसार के पाप को देख कर नदी काँप उठी। बड़ा ही भयानक स्वर उत्पन्न हो जाता था। इसी समय पानी से कुछ दूर हट कर यशोविजय जिसके बाल बढ़ गये थे, दाढ़ी लम्बी हो चुकी थी, देखने में डरावना प्रतीत होता था, बैठा था। अपने चारों ओर बहुत से सामान थे। एक टौर्च भी था, जिसे कभी-कभी एक क्षण जला कर वह कुछ सम्हालता और बुझा दे रहा था। कन्धे से रक्त

की बूंदें प्रवाहित हो रही थीं। वह एकाएक चौंका, उसके कानों में किसी की पद-चाप सुनाई पड़ी। उसने दूसरे क्षण रिवाल्वर तान लिया और चारो ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। मगर पद-चाप फिर निरन्तर बन्द हो गई। कुछ सोच कर यशोविजय ने अपना काम फिर आरम्भ किया। आध घंटे के बाद जब उसने टॉर्च जला कर कोई चीज सम्हालने के लिये हाथ उठाया तो अपने पीछे उसे किसी की आकृति-छाया आती दीख पड़ी। उसने रिवाल्वर उठा कर पीछे देखा, एक जवान दोनों हाथ में रिवाल्वर लिये उससे दस कदम की दूरी पर खड़ा है। उसने यशोविजय को देखते ही कहा, "रिवाल्वर को रख दो। बरना तुम्हें गोली मार दूंगा। मैं अकेले नहीं, मेरे साथ पचास सिपाही हैं।"

"तुम पुलिस के आदमी हो। मैं तुम्हें हर्गिज न छोड़ूंगा...।" कहते हुए यशोविजय ने अपने रिवाल्वर का घोड़ा ज्योंही दबाना चाहा कि वह जवान सामने से हट गया और डपट कर बोला, "....ठहरो अभी। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ। मैं केवल सी० आई० डी० का आदमी ही नहीं जो सीधे अभियुक्त को पकड़वाना जानते हैं। मैं इससे ऊपर उठा हुआ इन्सान हूँ। मैं यह भी जानना चाहूँगा कि अभियुक्त इन्सान क्यों हुआ ? मारने के लिये मैं भी तुम्हें गोली का निशाना बना सकता हूँ, मगर मुझे ऐसा नहीं करना है। मुझ पर विश्वास हो तो मुझसे बातें कर सकते हो, वरना गोली मार दो, मैं इसका प्रतिकार न करूँगा। तुम केवल लुटेरे नहीं, कलाकार भी हो, मैं तुमसे उचित निर्णय भी चाहता हूँ। बोलो, क्या कहते हो तुम ?" यशोविजय साधारण भावुक न था। उसने सुना, जवान के स्वर में वास्तविकता थी। जवान ने अपने उन हाथों को ऊपर उठा लिया था, जिनमें गोलियों से भरा रिवाल्वर मौजूद था। यशोविजय ने उसकी ओर एक बार श्रद्धा की दृष्टि से देख कर पूछा, "मुझे गिरफ्तार कराने की यह कोई पालिसी तो नहीं है ?"

"यह है मेरी पालिसी....।" कह कर जवान ने अपने हाथ के दोनों रिवाल्वर यशोविजय के आगे फेंक दिये और चुपचाप खड़ा रहा।

यशोविजय के अधर हिल उठे। उसने कहा, "आओ मेरे पास।" जवान बहुत ही शांतिपूर्वक उसके पास आ गया। यशोविजय ने कहा, "बैठो। मैं नहीं समझता था कि तुम पुलिस के आदमी होकर भी इतने ठंढे दिमाग के होगे। मुझे तुमसे मिल कर बहुत हर्ष हुआ। अब तुम कहो, मुझसे क्या जानना चाहते हो ?"

"मैं जानना चाहता था, इतने पढ़े-लिखे और कलाकार हो जाने के बाद भी तुम्हें ऐसा घृणित कार्य क्यों अपनाना पड़ा। कोई कारण तो अवश्य पड़ा होगा।" कह कर जवान ने एक संतोष की साँस ली।

यशोविजय ने कहा., "बतलाऊँगा तो विश्वास न करोगे।"

"यह भार तुम मेरे ऊपर छोड़ दो। तुम्हारे इस कारण के पीछे जो सत्य छिपा हुआ है, वह कह दो, मैं अपना समझ लूगा।" बोला जवान और इसके बाद बहुत गंभीर होकर यशोविजय अपनी इस जिन्दगी की आत्म-कथा उसे सुनाता रहा। बीच-बीच में सुनते समय जवान कभी-कभी आवेश में आ जाता और पूंजीपति समाज के प्रति क्रोध से अपनी मुट्ठियाँ बाँध लेता था। श्मसान के शान्त वातावरण में भी ये फुसफुसा रहे थे। कायर नहीं थे, फिर भी जान की परवा थी। कारण, अभी बहुत कुछ करना था। यशोविजय की कहानी समाप्त होते-होते जवान ने कहा, "यशोविजय, तुम मुझे अपना छोटा भाई समझ लो। तुम्हें मेरी माँ की शपथ है, मुझे अपने साथ रख लो। मैं ऐसे समाज के खिलाफ खुल कर क्रान्ति करूँगा, एक की नहीं, इसके लिये हजारों की जान लेनी पड़े, तो मेरा कदम पीछे न हटेगा। बोलो यशोविजय, तुम मुझे क्या उत्तर देते हो ?"

"मगर यह सब कुछ आवेश में कह रहे हो तुम। क्रान्तिकारी होना साधारण बात नही। और यह क्रान्ति अंग्रेजों को देश से भगाने वाली क्रान्ति नहीं है।" बोला यशोविजय।

"कैसी क्रान्ति है यह मैं समझ रहा हूँ। इस क्रान्ति का अर्थ है, पूंजीवाद के विरुद्ध सब कुछ करने को प्रस्तुत होना। भाई भाई को, एक गरीब मित्र पूंजीपति मित्र को, एक गरीब पड़ोसी लखपति पड़ोसी को गोली मारेगा

उसकी हत्या करेगा, लाश से गली और मकान का सहन पट जावेगा। मैं क्रान्ति समझ रहा हूँ यशोविजय! मैं समझ रहा हूँ, तुम चाहते हो, पूंजी-पतियों के खून से आकाश लाल हो उठे, गरीबों के पसीना से हिंदुस्तान का पाप धुल जाये। मनुष्य, मनुष्य का देवता नहीं बनें—उसे मनुष्य ही रहना होगा। तुम मुझे अपने साथ रख कर देखो, अमीर और कंजूसों को मैं चीटी की तरह पीस ूंगा....।"

"फ्रेंड, इस समय बहुत दुर्बल हो गया हूँ मे। मुझे कठोर होने की आवश्यकता है।"

"कैसे कठोर होना चाहते हो तुम?" जवान ने पूछा।

"तुमसे बहुत प्रेम हो गया है। और तुम्हें गोली मार कर मुझे और भी निर्मम होने की आवश्यकता है। तुम्हें मार देने के बाद तुम्हारा सारा उत्साह मुझमें चला आयेगा और उस काम को मैं अकेले कर लूगा जिस काम को हम तुम दोनों मिल कर कर सकते हैं। बोलो तैयार हो?" कह कर यशोविजय ने रिवाल्वर तान लिया। जवान ने अपने दोनों हाथ ऊपर उठा कर सीना तान कर कहा, "यदि मुझे गोली मार देने से तुम्हारा उत्साह बढ़ सके, तो इससे मुझे खुशी होगी। मेरा काम भी अगर तुम अकेले कर सके तो और मुझे चाहिये ही क्या? मेरा सीना मौजूद है, मारो गोली शौक से।"

"....।" यशोविजय का हाथ हिल रहा था।

"देखते हो क्या, क्या क्रान्तिकारी समाज को धोखा देने को सोच रहे हो? मारो गोली, तुम्हें मेरी माताजी की सौगन्ध....।" जवान जोश में बोल रहा था कि यशोविजय के हाथ से रिवाल्वर नीचे बालू पर गिर पड़ा और उसने जवान को छाती से लगाते हुए कहा, "शपथ न दो मेरे प्यारे भाई! यह तुम्हारी परीक्षा थी। आज समझ गया, इसी अर्थ में परीक्षक से अधिक परीक्षार्थी जानता है। मुझे पूर्ण विश्वास है, तुम मृत्युपर्यन्त मेरा साथ दोगे और हम अपने उद्देश्य की पूर्त्ति करते रहेंगे। आज से तुम मेरे भाई, हम दो शरीर एक प्राण हुए।"

यशोविजय का प्यार और ऐसी वाणी पाकर जवान आह्लादित हो उठा। उसने कुछ ही क्षण बाद सतर्क होकर कहा, "चलो, अभी यहाँ से भाग चलो। पुलिस के आदमी तुम्हें गिरफ्तार करने के लिये पुल के नीचे छिपे हुए हैं। देर होने पर वे यहाँ चले आयेंगे।"

"उठाओ सब सामान। झोले में कागजों को भर लो। रिवाल्वर और कारतूस मैं ले लेता हूँ....।" यशोविजय ने कहा और धीरे-धीरे टार्च जला कर जवान ने सारा सामान पीठ पर लाद लिया। ठंढक के मारे किनारे का बालू बर्फ-सा हो रहा था। इसके बाद अपने चारों ओर देखते हुए दोनों बढ़ चले, अनन्त की ओर।

(२३)

जहाँ तक अभिरामा के वहिर्मुखी व्यक्तित्व की बात है, यह निर्विवाद सिद्ध है कि वह अनिलदेव के निकट सम्पर्क में आ गई है; किंतु मनुष्य का रूप एक ही तो नहीं होता। और इसी पर मुझे सदैव सन्देह होता आ रहा है कि अन्तर्मुखी अभिरामा ने अनिलदेव को किस दृष्टि से देखा है, वह उनसे क्या चाहती है। यह हिंदुस्तान का और स्थान नहीं, यह शिमला है। यहाँ गर्मी में काफी ठंढ पड़ती है, फिर ठंढ के दिनों का क्या पूछना? पहाड़ी की तलहटी में नारियल, चीड़, ओक से भरे वन-प्रदेश में तीनों आदमी टहल रहे थे। सन्ध्या हो गई थी। सूर्य्य की स्वर्णिम किरणें अस्ताचल की ओर स्वतः खिचती जा रही थीं। मीनाक्षी ने ओवरकोट पहन रखा था। अभिरामा को यह सब पसंद नहीं फिर भी अनिलदेव के प्रेरित करने पर उसने स्वेटर पहन लिया है। उसके बदन पर शाल है। इस वन से दूर-दूर की पहाड़ी चोटियाँ दृष्टिगोचर हो रही थीं। पथ कंकड़ीला था। और चलते-चलते मीनाक्षी ने एकाएक कहा, "जीजा, मै थक गई हूँ।"

"तो, कहो क्या चाहती हो? बैठने की इच्छा हो तो तनिक पत्थर पर बैठ लो।" बोले अनिलदेव।

"नहीं, बैठने से मेरी थकावट दूर न होगी।"

"फिर वही काम करो जिससे थकावट दूर हो। अरे भाई, कष्ट किसे प्रिय होता है।" अनिलदेव नम्र होकर बोले। अभिरामा ने तनिक कड़ा होकर उससे पूछा, "कहती क्यों नहीं, क्या चाहती हो?"

"मैं कैम्प में जाना चाहती हूँ।"

"कैम्प यहाँ से दूर पड़ेगा। हमलोग काफी दूर आ गये हैं।"

"उससे क्या, आगे सड़क पार जाकर गाड़ी कर लूंगी।"

"तो जाओ। कहो तो हमलोग भी चलें।" अनिलदेव ने कहा। इस पर मीनाक्षी बोली, "वाह रे, यह क्या बात है! एक आदमी के साथ-साथ सब कोई क्यों परेशान होगें। आप लोग टहलिये। मैं जाकर वहाँ आराम करूँगी। नौकर तो वहाँ है ही।"

"अच्छी बात है तो जाओ।" अनिलदेव ने कहा और अपने कुत्ते का चेन पकड़े मीनाक्षी वहाँ से चल पड़ी। जब तक वह दृष्टि से ओझल न हो गई अभिरामा उसकी जाती हुई मूर्त्ति की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखती रही थी। उसके ओझल हो जाने के बाद उसने अनिलदेव को देखा तो उसे ऐसा लगा जैसे उनके मुख पर एक प्रश्न चिन्ह-रेखा जिसकी स्याही काली है, खिच गई है। उसने मन ही में एकबार आश्चर्य से पूछा, "यह क्या?" और फिर चुप रही। अनिलदेव अपने चारों ओर वृक्ष-वीथियों की शोभा देखते हुए बढ़ रहे थे। अभिरामा ने एकाएक उन्हें रोक लिया, "रुकिये।"

"क्यों क्या हुआ?" पूछा अनिलदेव ने।

"मेरा सर दर्द कर रहा है।" अभिरामा ने उत्तर दिया।

"सच, ठंढक तो नहीं लगी?" बोलते-बोलते रुक गये अनिलदेव।

"चलिये उधर। तनिक बैठ कर चलूंगी।"

"कहाँ बैठा जायेगा?"

"पत्थर पर। घबड़ाते क्यों हैं। क्या पतलून की स्क्रीच खराब हो जायेगी? इन्ही सारी बातों को हम मानसिक अन्याय कहते हैं। देखिये चाहे जो हो, आपको तो अब बैठना ही होगा।" अभिरामा ने कहा।

मैं अपने शब्दों म नहीं, परन्तु अनिलदेव के चरित्र-चित्रण द्वारा आपको प्रारम्भ से बतलाता आ रहा हूँ कि वे अभिरामा के किसी भी सिद्धान्त का प्रतिकार लगभग निन्नानवे प्रतिशत नही करते। इस समय भी अभिरामा ने उन्हें जो कुछ कहा, वे चुपचाप सुन लिये और बोले, "मुझे कोई एतराज नहीं। चलिये जहाँ कहिये मै चल कर बैठता हूँ।" इसके बाद अभिरामा उन्हें उस जगह ले चली जहाँ कुछ चिकने पत्थर भूमि से ऊपर उठे थे, और उनकी बनावट चबूतरे की भाँति थी। अनिलदेव उसके पीछे-पीछे चले। पत्थर के पास आकर अभिरामा साड़ी सम्हाल कर स्वयं बैठ गई और उसने उन्हें भी बैठने का संकेत किया। अपने बैठ लेने के बाद अनिलदेव ने अपनी घड़ी देख कर पूछा, "बहुत जोर से दर्द है क्या ?"

"क्यों, ऐसा क्यों पूछ रहे हैं आप ?"

"मेरा मतलब यह है कि थोड़ी देर में यहाँ अन्धेरा हो जायेगा। अगर कष्ट बढ़ता ही गया तो ठीक नही। आप सलाह दें तो हम अभी-अभी कैम्प चल चलें।" अनिलदेव ने उत्तर दिया। इस पर अभिरामा ने अनिलदेव की ओर देखा। उसकी दृष्टि विचित्र थी। ऐसा लगा जैसे उसकी आँखें कह रही हों, मेरे साथ जो चाल चली गयी है मैं समझ गई हूँ। वह बोली, "नहीं, इतना मत घबड़ाइये। आपको यहाँ इतमीनान से बैठना होगा। मै आपसे यह जानना चाहती हूँ कि आपने यहाँ से मीनाक्षी को जाने क्यों दिया ? या वह स्वयं ही जाना चाहती थी ?"

"क्यों, ऐसी तो कोई बात नहीं।" कुछ सशंकित होकर अनिलदेव ने कहा। इस पर अभिरामा ने उनकी ओर ऐसे देखा कि लगा वे अपनी ओर से पूर्ण सतर्क हैं। वह बोली, "आप कहते हैं, ऐसी कोई बात नहीं, और मैं कहती हूँ सब बातें हैं। मैं आपसे साफ-साफ जानना चाहूँगी, आखिर मीनाक्षी को यहाँ से हटा देने का क्या मतलब है ?"

"मतलब तो कुछ नहीं। उसने जाने की इच्छा प्रकट की, मैंने जाने दिया। वैसे आप जो भी अर्थ लगावें, आपको अधिकार है। मैं आपकी धारणा में कब हस्तक्षेप करता हूँ। मगर मेरी आत्मा जानती है, मैंने

"सुनिये मैं सौ बार कहती हूँ, मैं नहीं लूंगी ब्यूटी-सेट।" अभिरामा ने जोर देकर कहा। अपना पग आगे बढ़ाते हुए अनिलदेव ने असावधान होकर कहा, "ठीक है, कैम्प पहुँच कर लौटा दीजियेगा।"

"जब वापस ही लेना था तो लाये थे किसलिये ?"

"मैंने वापस लेने को कब कहा,आप रखना नहीं चाहतीं तो फिर वापस ही लेना होगा।" यह उत्तर था अनिलदेव का। अब वे सड़क के किनारे पहुँच गये थे। बहुत-सी गाड़ियाँ खड़ी थीं। अभिरामा ने एक बार गाड़ी और उसके आस-पास खड़े लोगों की ओर देखा फिर अनिलदेव से बोली, "हाँ, ठीक ही कहा, आपने। चलिये, कैम्प में। अभी-अभी आपका ब्यूटी-सेट वापस कर दूगी।'

अनिलदेव ने कुछ न कहा। वे गाड़ी ठीक करने लगे। कैम्प जाने की प्रतीक्षा में अभिरामा खड़ी थी।

(२४)

यशोविजय की आँखें जो झरने के श्वेत जल की भाँति उजली और साफ थी, उनमें अब रक्त उतर आया है, वे सिन्दूर के रंग को शरमा रही हैं। उसे उसकी भावुकता कहा जाये या उसके सिर पर खून सवार हो चुका है, कुछ समझ में नहीं आता। दीपमाला अस्पताल से निकल कर पूर्ण स्वस्थ्य हो गई है और यशोविजय को गिरफ्तार कराने के लिये पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उसे पचास पुलिस के आदमी दिया है। उसके साथ सी० आई० डी० का भी सहयोग है। स्टेशन, बड़े-बड़े शहर के चौकों पर इस आशय का इश्तहार चिपका हुआ है कि जो उसे जीवित गिरफ्तार करा देगा, सरकार उसे नगद पचीस हजार रुपये इनाम देगी। इश्तहार पर उसकी तस्वीर भी छपी है। यशोविजय को गाँव अथवा नगर का कोई भी धनी मानी रईस अपना सहयोग नहीं दे सकता। सभी उसके दुश्मन हैं। एक जगह वह मुश्किल से रह पाता है। शहर में वह दिन भर बाहर-बाहर मारा फिरता है, रात को भिखारियों की टोलियों में छिप कर सो रहता है। यह है

भिखारियों की टोली। नगर से कुछ दूर—जहाँ अमीरों की छाया भी नहीं जाती, यह वह स्थान है जिसकी कल्पना तक वे नहीं कर सकते हैं। यशोविजय यहीं रह लेता है। यह है भाग्यहीनों की बस्ती। जो जानते नहीं, जानवर और इन्सान में क्या अन्तर है। ताँबे के एक पैसे अथवा एक मुट्ठी अनाज के लिये समाज की झिड़की खाना ही शायद उनका जन्मजात संस्कार है। अमीर कहते हैं, इनमें सुधार लाना असम्भव है। इनका यह जीवन कभी सुधर नहीं सकता। यह इनका खान्दानी पेशा है। तो भीख के लिये आपके आगे हाथ फैलाना उनका खान्दानी पेशा है और उसके बदले उन्हें चोर, बदमाश, पाजी कहना, उन्हें फटकार बतलाना आपका जन्मसिद्ध अधिकार है, यही तो ? इन भाग्हहीनों के लिये अमीर उनके भगवान हैं और वे अधम, नीच, कुकर्मी सब कुछ। कभी नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। इन्सान, इन्सान का भगवान हो ही नहीं सकता। और आज का इन्सान उस सच्चे भगवान की भी दुहाई कहाँ मानता है जिसने उसे तब देखा, तब उसकी रक्षा की, जब वह माता के गर्भ में इन्सान की रूप-रेखा धारण कर रहा था, जब संसार के लोगों ने क्या स्वयं उसके पिता माता भी नहीं देख सके थे। जब वह भी नही देख सका था—संसार है क्या चीज। यशोविजय बहुत बड़ा क्रान्तिकारी और विचारक है। आधी अँधियारी रात है। वह भिखारियों के सरदार चौधरी की बगल में एक फटे टाट पर लेटा हुआ है। रात सूनसान है। सिर के ऊपर घने-घने भयावने वृक्ष हैं। जो सुख से जी रहे हैं, जिन्हें दोनों शाम भर पेट खाने और ऐशोआराम करने के लिये पैसे मिल जाते हैं चाहे वे पैसे जिस तरह भी क्यों न मिलते हों, मगर इस स्थान पर वे दिन को भी नही आ सकते। कहते हैं, यह ऐसी भयानक जगह है जहाँ दिन को भी जाते डर लगता है। चारों ओर ईंटें हैं, पत्थर हैं, खंडहरों के भाग हैं। हवा के चलने पर डरावना स्वर प्रताड़ित होने लगता है, यहीं रहते हैं ये लोग। ये हैं तो इन्सान। मगर पैसे वालों की दृष्टि में वे भूत-प्रेत हैं। पैसे वाले कहते हैं, ये स्वयं इतने काले और बदसूरत हैं कि भूत इन लोगों से डर जायेंगे। ये भूतों के चाचा हैं। मगर वे पैसे से पैदा हुए

इन्सान कभी क्या सोचते हैं कि वे काले-कलूटे होकर भी बनावट से दूर हैं। उन पर मिथ्या आवरण नहीं। और ये तो गोरे और खूबसूरत होकर भी अपने मुख पर पाउडर, क्रीम मले फिरते हैं। उन्हें भय होता है, उनके सौन्दर्य पर धूप न लग जाये। वे किसी की बहू बेटी के आगे असुन्दर न लग जायें अपनी ओर आकर्षित करने में कठिनाई का सामना करना पड़े। किसी भी सभा-सोसाइटी में तुम वेश्याओं की तरह श्रृंगार करके क्यों जाते हो, तुम्हें अपने ऊपर विश्वास नहीं है। तुम अपने को जितना भी मजबूत समझ रहे हो, तुम उतना ही कमजोर हो।

एक पीपल के पेड़ के नीचे मिट्टी का दीप जला कर हरीश कुछ लिख-पढ़ रहा था। हरीश वही जवान है जो एक बार यशोविजय को गिरफ्तार करने आया था और स्वयं उसकी ही क्रान्तिकारी भावनाओं और सचाई की बेड़ी में अब तक गिरफ्तार है। वह पुलिस वालों को खूब ही धोखा देता है। उसने खुद अपने साथ काम किये हुए सी० आई० डी० इन्सपेक्टर को गोली का शिकार बना दिया है। उसे याद है, वह जानता है, यशोविजय की क्रान्ति का वह विधान है जिसमें अपने सिद्धान्त की हत्या होते देख कर भाई-भाई की जान ले लेगा, माँ पुत्र की हत्या कर देगी, भाई बहन को टुकड़े-टुकड़े कर देगी। और पत्नी अपने सामने अपने प्रिय पति की लाश निकलते देखेगी। उसने अपने को काफी मजबूत बना लिया है। उसने अपनी भी कहानी यशोविजय को सुना दी है। यशोविजय सोच रहा है, बहुत कुछ। हरीश ने एम० ए० पास किया। माँ ने जेवर और खेत बेंच दिये। हरीश निम्न-जाति का लड़का है, इसलिये समाज में उसकी प्रतिष्ठा नहीं। बड़े-बड़े लोग उसकी ओर से नाक-भौं सिकोड़ लेते थे। अंत में उसने अखबार बेचना शुरु किया। वह अपनी योग्यतानुसार नौकरी खोजता था, पर मिलती कहाँ से? एक लखपति से उसका परिचय हुआ। उनकी लड़की बी० ए० की परीक्षा में तीन साल से फेल कर रही थी। उन्होंने हरीश से कहा, "तुम मेरी लड़की को पढ़ा कर परीक्षा पास करा दो। बड़े-बड़े लोगों से सिफारिश करा कर अच्छी नौकरी दिलवा दूंगा।" वृद्धा माँ मौत की घड़ियाँ गिन रही

थी। उसमें अपनी बहूरानी को देखने का शौक था। गाँव लौटने पर हरीश माता को यह समझाता कि वह अधीर न होवे। अच्छी नौकरी मिल जाने पर शादी कर लेगा। वह लखपति की लड़की को जी तोड़ कर पढ़ाता। परीक्षा आई। लड़की ने परीक्षा दी और प्रथम श्रेणी से उसने पास भी कर लिया। इसी बीच में गाँव से पत्र आया, हरीश की माँ जोरों से बीमार है। वह गाँव चला आया। माँ की तबीयत सख्त खराब थी। तीन माह समय यहाँ लग गया ;। माँ को पथ्य-पानी देकर वह शहर को लखपति के यहाँ लौटा तो देखा द्वार पर प्लाई-माउथ कार लगी है। कार की छाती की छत गजरे से छिप गई है। अंदर उसमें लखपति की लड़की दुल्हन बनी बैठी है। सामने एक युवक इंगलिश ड्रेस पहने खड़ा है। वह यह सब कुछ देख कर भौंचक तो रह गया, पर कुछ दुःख न हुआ। बेचारे ने अपनी बेटी की शादी की है तो क्या हुआ। वह सीढ़ी से ऊपर चढ़ने लगा तो लखपति मिले। इसे देखते ही बोले, "वाह, कहाँ रहे तुम इतने दिन। बेबी की शादी भी हो गई। तुम्हें खोजा करती थी। कम-से-कम शादी में तो आते। तुम्हारी शिष्या की शादी थी न ?"

"मेरी माँ बीमार थी। आपने मेरी नौकरी....।" हरीश बोल रहा था। उसकी बात काट कर उस लखपति ने कहा, "मुझे ख्याल है तुम्हारा। मगर मैंने उस पोस्ट के लिये मेहमान को वचन दे दिया है। आखिर दामाद न है भाई ! वैसे है तो प्रिंस, देखो कितने भले लगते हैं, मगर बैठा न रह रे मन कुछ किया कर। देखो, तुम भी मिलते-जुलते रहो। हो सका तो अवश्य ध्यान दूगा।" हरीश उनका मुख देख रहा था। उन्होंने उसके परिश्रम का फल देने के इरादे से एक नौकर को बुला कर कहा, "अरे, क्या यों देखता है, एक प्लेट मिठाई लाकर दे दे हरीश को। शादी-व्याह में तुम लोगों को इतना भी शऊर नहीं ?" उनकी आवाज सुन कर नौकर मिठाई लेने चला, मगर मिठाई आने के पहले लखपति के पास से हरीश चल चुका था। अंत में उसे सी० आई० डी० विभाग में नौकरी करनी पड़ी। दो तीन माह बाद जब वह माँ से मिलने गाँव आया तो माँ

स्वर्ग सिधार चुकी थी। पर उसे लगता है, माँ अभी तक जीवित है और इसीलिये वह किसी को माँ की सौगन्ध दिया करता है। ये सारी बातें यशोविजय की लाल आँखों के सामने चलते चित्र की भाँति घूम गईं। उसने क्रोध से करवट बदला। इन अभागे गरीबों को झूठ बोलना भी नहीं आता। ये लोग क्या झूठ बोलेंगे ? झूठ बोलते हैं, तो अमीर। इस तरह झूठ बोलते हैं कि किसी की सुनहली जिन्दगी मिट्टी में मिला देते हैं, किसी का घर बरबाद कर देते हैं, किसी की इज्जत चौपट कर देते हैं, किसी को दर-दर का भिखारी बना देते हैं। उसने एक रात जग कर चौधरी की भी आत्म-कथा सुनी है। उसकी कहानी भी ऐसी ही है। एकाएक धक्का देकर चौधरी को जगाया, हरीश को पास बुला कर बिठलाया और बोला, "तुम दोनों मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो। मस्जिद में बैठ कर शराब पीना पाप है, या मस्जिद से बाहर ?"

"मस्जिद के अंदर बैठ कर शराब पीना पाप है।" चौधरी और हरीश दोनों एक स्वर में बोले।

"तुम दोनों मूर्ख हो, ठीक से बोलो। वरना, दोनों को गोली मार दूंगा।" यशोविजय ने गरज कर कहा। वे दोनों बोले, "आप ही कहिये, हम नहीं समझते।" यशोविजय ने कहा, "मस्जिद में बैठ कर शराब पीना उतना पाप नहीं जितना पाप मस्जिद के बाहर शराब पीना है। मस्जिद के बाहर खुदा का लिहाज नही करते, बल्कि खुदा की आँख में धूल झोंकते हैं। पूंजीपति, तुम्हारा खून चूसते हैं, तुम पर अन्याय करते हैं, अपने कल-कारखानों में मजदूरों को जानवर की तरह खटाते हैं और फिर धर्मशाले खोलते हैं, धार्मिक संस्थाओं में दान देते हैं—यह कितना बड़ा पाप है ?"

"आप ठीक कहते हैं।" दोनों बोले।

"ठीक मान लेने से काम न चलेगा हरीश, यह मेरा आदेश है। आज ही दो घंटे के बाद उस लखपति के मकान में आग लगा दी जायेगी जिसने तुम्हें धोखा दिया था, जिसने तुम्हारी माता की जान ले ली। चौधरी, अपने भिखारियों को तैयार करो।"

"अभी इसी क्षण ?" चौधरी ने पूछा।

"हाँ, शहर में उतनी दूर जाना है। देर न करो। यदि हरीश ने भी देर की तो उसे गोली से उड़ा दिया जायेगा। मरना ही है तो कीड़े की मौत क्यों मरेंगे ? हरीश, तैयार हो जाओ।" यशोविजय ने कहा। देश के सच्चे इन्सान भिखारी चौधरी की आवाज पाकर उसी क्षण तैयार हो गये। सभी दुर्बल थे, आधे से अधिक भूखे सो रहे थे। दो एक नहीं उठे तो पता चला ठंडक लगने से उनका देहान्त हो गया। सबों की नस में एक महान क्रान्ति जागृत हो उठी। वे महाकाल से गला मिलाने को तैयार हो गये। एक बार स्वयं यशोविजय की आत्मा ने पूछा, यह सब क्या हो रहा है। मगर उत्तर था, यह जो कुछ हो रहा है, सब ठीक हो रहा है। यह क्रान्ति की एक पायलिया है, पूरा श्रृंगार नहीं। और सही अर्थ में यही क्रान्ति है जिसकी आग हिंदुस्तान के जर्रा-जर्रा में सुलग रही है। शांति की स्थापना कौन करता है और कैसे होगी ? झूठ क्यों बोलते हो ? शांति का नाम ले-ले कर अभागे गरीबों का भाग्य कब तक लूटते रहोगे ?

(२५)

तलहटी से वापस होते समय अनिलदेव के साथ अभिरामा जिस प्रकार कठिन हो गई थी, कैम्प में पहुँचने पर भी उसमें कोई परिवर्त्तन न हुआ। उसने आकर देखा, मीनाक्षी लेटी हुई है। बेचैनी अथवा शारीरिक परेशानी के चिन्ह तक न थे। उसने क्रूरता के साथ उसे देखा, अनिलदेव कपड़े बदलने लगे थे। मीनाक्षी ने विनम्र होकर पूछा, "टहल आयीं ?"

"हाँ, टहल तो आयी। आपको एक ही क्षण में कौन-सा रोग समा गया जो भाग आयीं ?" उत्तर देते हुए इस प्रकार अभिरामा ने पूछा। प्रश्न पूछने का ढंग तनिक दुरुह था। मीनाक्षी ने इसका कोई प्रतिकार न किया। उसने पूर्ववत् कहा, "पैर में एकाएक दर्द ऐसा मालूम हुआ कि मैं वहाँ थोड़ी देर भी ठहर नहीं सकती थी। मैं समझती हूँ, आपको मेरा आना अच्छा न लगा होगा क्योंकि यह सभ्यता के विरुद्ध है।"

"आगे यह भी कहो। फॉर दी सेक ऑफ कट्सी तो मुझ रह ही जाना चाहिये था।" अभिरामा ने कहा। मीनाक्षी कुछ न बोली। इसके बाद अभिरामा अपने टेंट में चली आयी। टेबुल पर ब्यूटी सेट रखा हुआ था उसे अभिरामा ने अभी खोला तक न था। वह कुर्सी पर शिथिल होकर बैठ गई। उसके दिमाग में एक बार यह विचार उठा कि वह अनिलदेव को पुकार कर कह दे कि वे ब्यूटी सेट वापस ले जायें। उसने पुकारा, "अनिलदेव जी?" यद्यपि उसका स्वर अनिलदेव तक क्या मीनाक्षी तक भी न पहुँच सका जो उसकी बगल में थी। फिर भी वह स्वयं ही बोलती रही, "ले जाइये, आप अपना ब्यूटी सेट! मुझे आवश्यकता नहीं है इन चीजों की। इन्सान जो बन गया है वही इन्सान है, उसे फिर से नया नहीं बनाया जा सकता। बदन के सौन्दर्य से व्यक्तित्व की सुन्दरता अधिक मूल्यवान है। आपने मुझे क्या समझ लिया है; मुझे सौन्दर्य के बाजार में नहीं बैठना है। भगवान् ने जो मुझे एक बार बना दिया है, मुझे इसी पर संतोष है। और यदि मैं चाहूँ भी तो इसमें क्या? मैंने तो आपसे ब्यूटी सेट माँगा नहीं था। मीनाक्षी को आपने ला दिया, ठीक किया। उसे ये चीजें पसंद हैं, इसी फैशन में पल कर वह इतनी बड़ी हुई है, मगर मैं तो ऐसी नहीं हूँ। आपने मुझे मीनाक्षी क्यों समझ लिया? देखिये, यह बात ठीक नहीं। अगर आप नहीं सम्हलेंगे तो मैं शिमला में क्या भुवाली सैनेटोरियम और इटकी के सुख पर भी लात मार दूगी। और यह भी जान लीजिये, ब्यूटी सेट का जो प्रभाव होता है वह मुझ पर नहीं पड़ सकता। ये....।" कहते-कहते अभिरामा कुर्सी पर से उठी और उसने टेबुल पर पड़े ब्यूटी-सेट को उठा कर जमीन पर पटक दिया, और कुछ और भी दीर्घ स्वर में बोलने लगी, "हाँ, ये ले जाइये ब्यूटी सेट....मुझे जरूरत नही है इसकी.... देखते क्या हैं, मेरा मुख मत देखिये....उठाइये न इसे....अब क्या चाहते हैं आप मुझसे....अगर कुछ कहना है तो कहिये....देखिये मुझे आपकी यही आदत पसंद नहीं....आप बेकार इतने सीधे क्यों बनते हैं....उठाइये, इसे ले जाइये....वरना मैं इसे बाहर फेंक दूंगी।

उठाइये इसे, मुझे न आपका ब्यूटी-सेट पसंद है और न आप....।"

वह बोलती जा रही थी। ब्यूटी सेट का ढक्कन खुल गया था। अभिरामा क्रोधावेश में काँप रही थी। उसका मुख रक्ताक्त हो उठा। उसने एक बार गरज कर कहा, "ले जाइये, वरना मैं इसे ठोकर से मार कर फेंक दूँगी।" और जब उसने अपना पैर ब्यूटी सेट पर ठोकर लगाने के लिये बढ़ाया तो लगा जैसे उसने साँप की पीठ पर अपना पग फैलाया हो। उसे अनिलदेव का स्वर सुनाई पड़ा था। वे बाहर नौकर को समझा रहे थे कि इस समय जरा सतर्क होकर सोया करो। चोर के आने की बड़ी आशंका रहती है। वह झटपट नीचे गिरे हुए ब्यू टी सेट को उठा कर टेबुल पर रखने लगी। धीरे-धीरे अनिलदेव का स्वर समीप आता जान पड़ता। वह बार-बार ब्यूटी सेट को उठा कर टेबुल पर रखती और वह नीचे गिर-गिर पड़ता। लगता जैसे टेबुल पर रखा जाने के पहले ही उसे कोई फेंक देता है। उसका मन घबड़ाहट से भरता जा रहा था। वह डर कर द्वार की ओर देखती और ब्यूटी सेट टेबुल पर रखने लगती, उसका हाथ मन की भाँति उसका साथ नहीं देता। वह परेशान हो रही थी। उसे लग रहा था, वह किसी के मकान में प्रवेश कर चोरी कर रही है। मकान-मालिक जग चुका है और वह हर कमरे में घुस-घुस कर चोर को खोज रहा है। वह जान रही है कि मकान का मालिक अब इस घर में भी शीघ्र ही चला आवेगा। अब वह क्या करे, क्या न करे, कुछ समझ में नहीं आ रहा है। अब वह पकड़ ली जावेगी। इसी समय अनिलदेव द्वार पर आ गये। उसने देख लिया तो विचित्र हालत हो गई। अभिरामा ने घूंघट काढ़ लिया, शरमा गई। ब्यूटी सेट हाथ में था। अनिलदेव ने कहा, "सोते समय सामने का पर्दा गिरा लिया कीजिये। ठंढ अधिक पड़ती है। आपको नुकसान पहुँचेगा।"

"आप इस तरह बहरे क्यों हो जाते हैं ?" अभिरामा ने पूछा। मुख विपरीत दिशा की ओर ही था। उनकी यह स्थिति देख कर अनिलदेव ने आश्चर्यवश पूछा, "यह क्या, आपने घूंघट क्यों काढ़ लिया है.... आपको क्या....?"

"देखिये, अब मुझे अधिक परेशान न कीजिये।" अभिरामा बोली। उसके स्वर में एक अत्यन्त मार्मिक व्यथा छिपी थी। ऐसा लग रहा था उसके हृदय पर काफी आघात पहुँचा है। अनिलदेव कुछ समझ न सके। उन्होंने कहा, "आप इस रुग्नावस्था में क्यों हो गई, मैंने तो कुछ भी नहीं कहा है। कहिये, मुझसे कुछ गलती हुई है?" इस पर अभिरामा ने कहा, "जाने दीजिये, मैं सब समझती हूँ। आप मुझसे क्या चाहते हैं, वह साफ-साफ कहिये। क्या अभी और कुछ कहना बाकी रह गया है........ मैं जानती हूँ, उनके भाग जाने पर आपने मेरी बड़ी सहायता की है, मेरे लिये बड़ा कष्ट उठाया है, मगर जब उस कष्ट को महसूस ही करना था तो उसे करना भी नहीं चाहिये था....जो विचार मनुष्य के हृदय में खलता हो उसे होठों पर भी नहीं आने देना चाहिये....और उसके पहले अभी-अभी मैंने आपको क्या कहा, आपने कुछ सुना भी....?"

"संभव है, इसके पहले आपने बहुत कुछ कहा हो, मगर मैं तो आपके पास था नहीं जो सुन पाता। और सुना है, जो कुछ उससे तो जी नहीं चुराता।" बोले अनिलदेव। अब अभिरामा ने अपना घूंघट हटा दिया और क्रोध में तमतमा कर बोलने लगी, "देखिये, जरा सम्हल कर बोलिये। वे नहीं हैं तो इसका माने यह नहीं कि मेरी बुद्धि मेरे साथ नहीं,... आपने क्या मुझे पागल समझ लिया है....देखिये मनुष्य वही होता है, किंतु परिस्थिति ही सब कुछ कराती है। कोई नहीं जानता है, विधाता किसके साथ कौन-सा खेल खेलेंगे।"

"मुझसे क्या गलती हुई आज, कहिये न। आपने कहा, मुझे ब्यूटी सेट की आवश्यकता नहीं। तो मैंने कह दिया, ठीक है वापस कर देंगी। उसके आगे आप ही कहिये, मैंने कौन-सी अनुचित बात कह दी है आपको?" अनिलदेव ने कहा। वे आश्चर्य के चक्कर में पड़ गये थे। इस बार कुछ और भी उद्दंड होकर अभिरामा कहने लगी, "आपके मुँह पर तो हरदम ब्यूटी सेट ही है। और मैंने तो सौ बार कह दिया, मुझे नहीं

चाहिये ब्यूटी सेट ! ले क्यों नहीं जाते ? अब कैसे कहूँ आपको ?"

"ले जाऊँगा। आपको इस प्रकार नफरत मुझसे क्यों हो गई है ?"

"नहीं, आप ले जाइये। अपना अपना ही है। पराया, पराया ही है। मैं सब समझती हूँ। भगवान ने आपकी तरह पैसे वाला नही बनाया, नहीं तो क्या मेरी समझ भी उसने छीन ली है। ये लीजिये, ले जाइये अपना ब्यूटी सेट....।" कहती हुई अभिरामा ने ब्यूटी सेट उठाकर चाहा कि उसे अनिलदेव के हाथ में थमा दे, मगर ज्योंही उसे हाथ में लेने के लिये झुके कि उसने फिर उसे वापस ले लिया और अति मार्मिक शब्दों में बोली, "रहने दीजिये, यह आपकी अपनी चीज है। जब चाहें, ले जा सकते हैं। इस पर तो आपका वह अधिकार है कि यदि मैं इसे रखना भी चाहती तो आप हाथ से छीन कर ले जा सकते थे। अब इस समय जाइये आप। अपना काम कीजिये। मुझसे अधिक बहस कीजियेगा तो मैं आत्म-हत्या कर लूंगी।"

"आप परेशान न होइये। मैं जा रहा हूँ।" कह कर अनिलदेव वहाँ से हटे और नौकर से बातें करने लगे। उन्होंने फिर अभिरामा से कुछ पूछा तक नहीं। रात हो गई। भोजन बन कर तैयार हुआ ; नौकर ने भोजन का थाल लाकर अभिरामा की टेबुल पर रख दिया, मगर उसे देखते ही अभिरामा ने अपना मुख ऐसा बनाया जैसे उस पर बरस पड़ेगी। तैश में बोली, "खाना उठा कर ले जाओ, नहीं लात मार दूगी।" नौकर चुपचाप भोजन का थाल लिये वापस आया और इसकी सूचना अनिलदेव को दे दी। मीनाक्षी कुछ कहने सुनने गई तो अभिरामा ने उसे बोलने की कसम दे दी।

घड़ी में जब रात के दो बजे तो अनिलदेव ने देखा, अभिरामा धीरे-धीरे उनके टेण्ट में प्रवेश कर रही है। अनिलदेव को भी नींद नहीं आयी थी। प्रत्यक्ष रूप से तो वे अभिरामा की ओर से असावधान दीख पड़े थे, मगर उसके सुख-दुख की चिंता उन्हें कम थी, सो बात नहीं। वे अपनी

ओर से ऐसी कोई बात भी नहीं होने देना चाहते थे कि जिससे अभिरामा के दिमाग पर मानसिक चोट पहुँचे। वे पलंग से उठने का उपक्रम कर ही रहे थे कि अभिरामा उनके सिरहाने आकर खड़ी हो गई। लैम्प जल रहा था। वे उसे बैठने के लिये संकेत देने ही वाले थे कि अभिरामा ने कहा, "देखिये, मैं आप से इस समय आपत्ति की बात करने नहीं आयी हूँ। बल्कि मुझे यह कहना है कि आप अब शीघ्र ही मेरे शिमला छोड़ देने और मेरे उसी घर पर पहुँचा देने का प्रबन्ध कर दें, जहाँ से आप मुझे ले आये हैं। भगवान चाहेंगे तो मेरा रोग बढ़ेगा अथवा घटेगा।"

"मगर यह बात तो आप सुबह भी कह सकती थीं। इतनी रात को ....।" अनिलदेव बोल रहे थे। उनकी बात काट कर अभिरामा बोली, "खैर यह सब तो मेरे टूटे हुए नसीब का दोष है। मैं क्या जानती थी कि उनके जुदा होते ही आपको मुझे चिढ़ाने का मौका मिल जायेगा।" इसके बाद उसकी आँखों से अश्रुकण छलक पड़े। अनिलदेव ने उसे ोकना चाहा, मगर वह रुकी नहीं, बाहर चली गई।

(२६)

यशोविजय और हरीश के साथ हजारों भिखारियों ने लखपति का मकान घेर लिया। बाहर से मकान में आग लगा दी गई, भीतर कमरों में गर्मी के पहुँचते ही लखपति के नौकर चिल्लाते हुए द्वार खोल कर बाहर निकले और हरीश तथा यशोविजय मौका देख कर भीतर प्रवेश कर गये। लखपति का परिवार आश्चर्यचकित था। वे परमेश्वर की दुहाई मना रहे थे। ऐसा लग रहा था, जैसे घर में सिंह का झुंड प्रवेश कर गया हो। वे नौकर को पुकार रहे थे। मकान की खिड़की जलती और टूट-टूट कर सड़क पर गिरने लगी थी। अग्नि की विशाल लपट से आकाश लाल होने लगा। इसी समय उनके नौकर उनके पास आ गये। वातावरण में हाहाकार मचा हुआ था। नीचे की सीढ़ियों को पार करते हुए यशोविजय और हरीश ऊपर चले आ रहे थे। नौकर जब सीढ़ी से ऊपर चढ़ने लगे तो हरीश

ने उन्हें धक्के दे-दे कर नीचे गिरा दिया, उनके मुख से रक्त की धारा बह निकली। ऊपर पहुँच कर उन्होंने देखा, लखपति फोन का रिसीवर उठा रहा था।

"हरीश ?" यशोविजय ने पुकारा।

"क्या है ?"

"देखो....।" और यशोविजय ने लखपति की ओर संकेत किया। हरीश ने कहा, "यह वही आदमी है मित्र, जिसने मेरी जिन्दगी खराब कर दी थी, जिसकी क्रूरता के कारण मेरी प्यारी माँ स्वर्ग सिधार गई, जो अपनी मृत्यु के समय मेरा मुख तक न देख सकी....।"

"देखते क्या हो, रिसीवर हाथ से छीन लो।" यशोविजय ने आदेश दिया।

"हलो, फायर सर्विस....।" लखपति फोन पर बोल रहा था। उसकी दृष्टि हरीश पर पड़ी। उसने कहा, "तुम हरीश....।" घबड़ाहट में उसके हाथ से रिसीवर छूट गया। वे समझे, हरीश उसकी सहायता के लिये आ पहुँचा है, स्नेह से उसके नेत्रों में जल भर आया। हरीश एक क्षण रुका, यशोविजय ने उसका कंधा झकझोर कर कहा, "हरीश, यह क्या....?" और इसके बाद उसकी लाल-लाल आँखें उसके सामने घूम गईं। हरीश ने उसका विचार समझ लिया। उसने आगे बढ़ कर लखपति के हाथ से रिसीवर छीन लिया। लखपति चीख पड़ा, "हरीश....?"

"आप फोन नहीं उठा सकते।" उसके समीप आकर यशोविजय ने कहा। मकान जल रहा था। सड़क पर भिखारी डरावना शोर मचा रहे थे। मकान के जलने और गिरने से भयानक स्वर चारों ओर गूंज रहा था। भिखारी नीचे से आग भड़काने में तल्लीन थे। लखपति का मकान जल रहा था। बगल का कमरा जोरों से धधक रहा था। यशोविजय ने हरीश से कहा, "हरीश, स कमरे के बहुमूल्य सामानों को उठा कर आग में झोंक दो।" क्रान्तिकारी युवक हरीश उसकी आज्ञा टाल नहीं सकता था।

लखपति का चेहरा उसे पिशाच-सा प्रतीत हो रहा था। उसे लखपति की कही हुई बातें याद आ रही थीं, उसने कहा था, 'देखो तुम भी मिलते-जुलते रहोगे। हो सका, तो ध्यान दूंगा।' वह अपने मजबूत हाथों से इस कमरे के सामानों को उठा-उठा कर बगल के जलते हुए कमरे में झोंकने लगा। लखपति ने चिल्ला कर कहा, "यह क्या कर रहे हो हरीश ?"

"वही कर रहा हूँ, जो आज के बहुत पहले कर देना चाहिये था।," हरीश ने उत्तर दिया। अब तक आधा से अधिक मकान आग की लपट में फँस चुका था। भिखारी चिल्ला रहे थे, "काली माई की जय !" गरीबों की आह लखपति के सामने उसका पाप बन कर नंगी नाच रही थी। लखपति भय से काँप रहा था। बाहर के शोरगुल से कान में ऐसी गूंज पैदा होती कि सम्भवतः प्रलय मच रहा है—विश्व का खंड होने जा रहा है—लोग विशाल समुद्र की ओर भागे जा रहे हैं। साम्राज्यवाद का अंत होने जा रहा है, पूंजीवादियों के संसार में भीषण क्रान्ति मच उठी है, प्रलय—महाप्रलय ! लखपति ने पूछा, "बाहर, कौन लोग शोर कर रहे हैं, हरीश !"

"वे भिखारी हैं, सर्वहारा हैं, जिनका भीख माँगना ही जातीय संस्कार है। भर पेट भोजन मिल जाना ही उनका भाग्योदय है, वे ही आपका मकान जला रहे हैं, वे ही आपकी पूंजी लूट रहे हैं—उनकी ही आँखों ने आपका यह सुख न देखा, वे ही वही हैं, जिन्हें घने वन के अन्धेरे में जलाने के लिये किरासन तेल भी नहीं मिलता और आपके घर में दर्जनों बल्ब जलते हैं, सोते समय उन्हें बुझा कर आपको डीम-लाइट जलाना पड़ता है। तेज रोशनी में आपकी नाजुक पलकें सट नहीं पातीं।" इतनी बातें हरीश एक ही साँस में कह गया, अग्नि की ज्वाला से उस कमरे में सभी पसीने-पसीने हो रहे थे। देखते-देखते इस कमरे में भी आग लग गई। नेपथ्य से एक बार आवाज आई, "....पिता जी....आह....!"

"बेबी....?" लखपति चिल्ला पड़ा। मकान तीन महला था। लखपति की लड़की दो मंजिले पर थी। लखपति तिमंजिले पर था।

यशोविजय ने कहा, "देखो, कौन है....?" हरीश दौड़ता हुआ नीचे पहुँचा। बेबी को आग की लपट ने चारों ओर से घेर लिया था। उसकी मांग पर सिंदूर की लाल रेखा चमक रही थी। हरीश को याद हो आया, इसी लाल रेखा के बाद लखपति ने हरीश का कोई मूल्य न समझा। बेबी की शादी के बाद हरीश कोई तत्व न रह गया था। तब तक ऊपर की खिड़की जल कर नीचे गिर चुकी थी। यशोविजय उधर से चिल्ला कर कह रहा था, "हरीश, देर न करो। उसे खींच कर आग के भीतर झोंक दो....।" बेबी चिल्ला रही थी, "मास्टर साहब...मुझे ....बचाइये। बड़ा पुण्य होगा। आपका यह अहसान जीवन भर नहीं भुलूंगी....मास्टर साहब....ओह, मेरे प्राण मुश्किल में....।" द्वार पर खड़ा-खड़ा हरीश यशोविजय और बेबी की बातें दुविधा बन कर सुन रहा था। दोनों का स्नेह दो ढंग से काम कर रहा था। उसके पैर थरथरा रहे थे। ऊपर से हाथ में रिवाल्वर लिये यशोविजय कह रहा था, "अब क्या चुपचाप खड़े हो। हरीश, अपनी प्रतिज्ञा याद करो। तुमने अपने को कितना कठोर रखने का वचन दिया था, हमारी क्रान्ति का वह संविधान है जिसमें उसका उल्लंघन करने पर माँ इकलौते बे की हत्या करेगी, भाई अपनी प्यारी बहन को मार देगा, पत्नि अपने पति का शव देख कर 'ओह' तक न करेगी, और....।" उधर बेबी विनय कर रही थी, "मास्टर साहब, मुझे बचा लीजिये, मैं मर जाऊँगी, देखिये, आग की लपट अब मेरे बदन को छूना चाहती है।" हरीश मूर्त्ति बन गया था। यशोविजय ने आगे कहा, और "शिष्य आचार्य की हत्या करेगा....।" हरीश अब भी हाथ बाँधे खड़ा था। यशोविजय ने इस बार कहा, "हरीश, तुम बात नहीं मानते। अब दो मिनट बाद इस रिवाल्वर की गोली तुम्हारी छाती में घुस जायेगी। हमारी क्रान्ति में दया का नाम नहीं है। इस क्रान्ति का विरोध करने पर गुरु शिष्य की हत्या कर सकता है....।" यशोविजय के इस वाक्य से हरीश का ज्ञान-तन्तु इस प्रकार हिल उठा जैसे शान्त समुद्र में बड़ा-सा पर्वत टूट कर गिर पड़ा हो। वह थर्रा उठा। खिड़की के एक

छड़ से सामने की आग हटा कर उसने बेबी को पकड़ा। बेबी पूर्ण नवयौवना थी। हरीश उसे आग में झोंक देना चाहता था। उसे हरीश ही नहीं कहलाना था अब, बल्कि वह क्रान्तिकारी हरीश था। निर्जन नदी के तट पर उसने जिस अनुशासन पर स्वयं ही एक विवेचनात्मक प्रकाश डाला था, उसका उल्लंघन कैसे कर पाता। उसने बेबी को उठाया, बेबी हाथ पैर पटकती हुई बोली, "मास्टर साहब. . . .मेरी जान आपके अधिकार में हैं. . . . मुझे बचा लीजिये. . . .मेरी जिन्दगी. . . .।" मगर बेबी की प्रार्थना पूर्ण भी न हो पायी थी कि हरीश ने उसे अग्नि की भीषण ज्वाला में झोंक दिया। यशोविजय ने ऊपर से लखपति को खींच कर कहा, "देखिये, अपनी बेबी और अपने मास्टर हरीश को।" लखपति ने देखा तो उसका हृदय बाहर आने लगा। तब तक बाहर भिखारियों में बड़ा ही भयानक शोर हुआ। पड़ोस के लोगों ने पुलिस-विभाग वालों को सूचना दे दी थी। मकान चिता की भाँति लहर रहा था। बाहर भिखारियों पर गोली चलने लगी थी। भिखारी गोली खा-खा कर भूमि पर धराशायी होते जा रहे थे। उनसे भागने के लिये कहा जाता, मगर वे भागते नहीं; बल्कि मकान में सुलगती हुई अग्नि को और भड़का रहे थे।

अंत में लखपति को भी जलती आग में फेंक कर यशोविजय हरीश को लेकर बाहर निकलने की चेष्टा करने लगा। सैकड़ों भिक्षुक मारे और घायल किये जा चुके थे। सड़क पर संगीनधारियों की तैयारी थी। बहुत यत्न के बाद वे दोनों इस व्यूह से निकल पाये। नीचे की मंजिल में भिखारियों ने बहुत-सा सामान लूट-खसोट लिया था। यशोविजय का संकेत पाकर वे भी भाग चले। पुलिस ने थोड़ी दूर तक पीछा किया, मगर कैप्टेन ने उन्हें गिरफ्तार करने का आदेश नहीं दिया था। हजारों भूखे-कंगाल गिरफ्तार करके क्या किये जाते। जब इनका झुंड नदी-तट की ओर मुड़ा तो पुलिस की लारी वापस चली गई। बहुत दूर से हरीश और यशोविजय देख रहे थे। मकान जल रहा था और उस पर शायद फायर-सर्विस वाले पानी

के फव्वारे डाल रहे थे। मुहल्ले के लोगों का शोरगुल दूर तक सुनाई दे रहा था।

उक्त घटना के एक सप्ताह बीत गया। यशोविजय पर पुलिस का साधारण ध्यान नहीं रहा। शहर की ऐसी जितनी भी घटना होती, उन सब का कारण दीपमाला उसी को बतलाती थी। सरकार के कानून का चक्र उस पर अंतिम शक्ति लेकर चला। यशोविजय पर मानवता को विनाश की ओर अग्रसर करने का अभियोग लगाया गया, उसे शान्ति का शत्रु प्रमाणित किया गया और सरकारी आदेश जारी हुआ कि पुलिस अथवा कोई भी समाज का व्यक्ति उसे पहचानने पर उसकी हत्या कर सकता है। जीवित पकड़ कर लाने वाले को भरपूर पुरस्कार मिलेगा। यशोविजय जानता था कि गिरफ्तार होने पर फाँसी का दंड उसके लिये ध्रुवसत्य है। परन्तु अपने प्राणों का कुछ भी भय न करते हुए वह दो सप्ताह तक अपने को पुलिस और सर्वसाधारण की आँखों से बचाते हुए अमीरों को सताता और उनके पाप और अकर्मण्यता की कमाई को लूटता रहा। इस बीच अपने हाथ से उसने कई खून भी किये। अन्ततः उसकी अनुपस्थिति में जब पुलिस ने एक बार भिखारियों की टोली पर रात में छापा मारा तो दूसरे दिन हरीश के साथ बैठ कर कही अन्यत्र चल चलने का कार्यक्रम बनाने लगा। उसकी यह इच्छा जान कर भिखारियों में असाधारण असंतोष की भावना फैल रही थी।

(२७)

उस बात की घटना के बाद अनिलदेव अभिरामा से और भी खिचे-खिचे रहने लगे। दो दिन और बीत गये। न अभिरामा ने ब्यूटी सेट ही लौटाया और न फिर यहाँ से लौट चलने की ही चर्चा की। हाँ, उसमें परिवर्त्तन यह हुआ कि उसने मीनाक्षी से एक शब्द भी बोलना छोड़ दिया। मीनाक्षी के हृदय में उसके प्रति चाहे जो भी भाव रहा हो, मगर अभिरामा के इस अचानक परिवर्त्तन से उसे महान कष्ट हो रहा था। वह नहीं चाहती

थी, एक साथ रह कर भी एक दूसरे से न बोलें। उसने दो एक बार स्वयं अभिरामा को बोलने के लिये अनुरोध भी किया, मगर अभिरामा का उत्तर कुछ ऐसा था कि फिर आगे बोलना उचित न होता। मीनाक्षी मन-ही-मन यहाँ चली आने के लिये गहरा पश्चात्ताप कर रही थी। अनिलदेव ने उसके घर लौट चलने की इच्छा मीनाक्षी से भी जाहिर की। वह तैयार हो गई। उसे अब यहाँ अच्छा नहीं लगता था। उसने अनिलदेव से कहा, "हाँ, अब ले चलिये। पिता जी के बिना मेरा भी मन घबड़ाता है। मैं नहीं जानती थी कि ये इस प्रकार सीरियस होंगी।" 'ये' संकेत अभिरामा की ओर था। बीच में वनजा की चिट्ठी आयी थी कि वे और डा० हेमचन्द्र मीनाक्षी को रोज याद किया करते हैं। अभिरामा के स्वास्थ्य में अब कोई गड़बड़ी नहीं रह गई थी। परन्तु उनका एक मानसिक रोग चरम-विंदु (climax) पर पहुँच रहा था। और वह रोग था, अपने आप झुंझला उठना। किसी ने कुछ कहा नहीं, चर्चा टहलने चलने की हो रही है, बात शिकार पर चल रही है और बीच में बोल देगी, 'धत् यह सब क्या थर्ड क्लास बातें कर रहे हैं आप लोग, और जाने भी दीजिये। अपनी ही पसंद दुनिया की पसंद तो नहीं होती। मनुष्य अकेले न दुनिया को अपनी पसंद के लायक बना सकता है और न स्वयं दुनिया को यह कह कर खुश रख सकता है कि मैं तुम्हारी पसंद का हूँ। कोई कुछ भी बात करे, मुझे क्या मतलब ? क्षमा कीजियेगा, मैंने इतनी बातें बेकार ही बोल दी। धत् तेरी की...।' और इसके बाद उठ कर नीचे अपने बिछावन पर जाकर लेट रहेगी। उस समय किसी ने छेड़ा तो लगेगा जैसे उसका मुँह नोच लेगी और बोलते-बोलते स्वयं रो पड़ेगी। अनिलदेव शिमला से लौट चलने की सारी तैयारी अभी कर लेंगे। मगर उसके भय से वे कर नहीं पाते। मगर वे सोच रहे हैं एक बार पूछ क्यों न लूँ। उनके दिमाग का कोई ठीक नहीं। क्या निश्चित है उस दिन मन में आया, कह दिया, यहाँ से शीघ्र ही ले चलिये। अब यदि चलने की बात कही जाये तो कहें, नहीं जाऊँगी। अनिलदेव के हृदय में उसके लिये अगाध प्रेम और श्रद्धा का भाव है—जो सत्य है—

चिरन्तन। वे उसके मस्तिष्क को मस्तिष्क का जखम समझने लगे हैं जो किसी चीज से तनिक स्पर्श होते ही पीड़ा से भर उठता है। वे उसकी इच्छा का तनिक भी विरोध नहीं कर सकते। वे अभिरामा को कुछ भी नहीं कहेंगे। वनजा यदि उसके स्थान पर होती तो वे उसे समझाते, उसकी गलतियाँ उसके सामने रखते, उसको दो चार कड़े शब्द भी कहते, मगर इसके साथ कुछ नहीं। ऐसी बात नहीं है कि उन्होंने ऐसा करने के लिये कभी सोचा नहीं है। उन्होंने सोचा भी है, सहुलियत से उसे समझावें। परन्तु बीच में व्यवधान तो यह है कि वह स्वयं जो कुछ कहती है उसे ही सत्य मानती है। यदि समझाने का असर गलत पड़ गया तो वह और भी परेशान होवेगी। और ऐसे विचार मन में आने पर अनिलदेव को लगता है जैसे वे पाप करने जा रहे हैं, मगर बीच रास्ते से लौट आये और अब वे ऐसा नही करेंगे। वे रूक जाते हैं—बिल्कुल। अस्तु !

शाम को जब अनिलदेव मीनाक्षी के साथ मैदान की ओर टहलने जाने की तैयारी कर रहे थे तो अभिरामा ने स्वयं आकर कहा, "मैं टहलने न जाऊँगी। आप लोग भी टहल कर डेरे पर सवेरे चले आइयेगा।" इस बार अनिलदेव को लगा जैसे उसकी मानसिक स्थिति अपनी राह पर आ रही है। वे बोले, "अच्छी बात है। तब तक आप नौकर पर ध्यान रखिये। भोजन बनाने में इधर-उधर कर देता है।" और तब अभिरामा लौट आयी थी। वे दोनों टहलने चले। मीनाक्षी के हाथ में कुत्ते का चेन था। अनिलदेव के हाथ में बड़ा-सा टौर्च और जेब में पिस्तौल। नौकर जहाँ रसोई बना रहा था, अभिरामा फिर वहाँ आकर टेबुल पर बैठ रही। आज वह बहुत सही तरीके से बातें कर रही थी। नौकर भी खुश था। भोजन बनाने में उसने आज नौकर का भी हाथ बटाया। टेबुल पर बैठी-बैठी वे गीत भी गुनगुना देती—"पपीहा फूला नहीं समाये।" मीनाक्षी के बिछावन पर सिरहाने कई इंगलिश उपन्यास रखे थे। वह उन्हें उठा कर ले आयी। दो चार परिच्छेद पढ़ी और फिर रख आयी। नौकर से बोली, "महेश,

तुम तो उपन्यास शब्द का माने भी नहीं जानते होगे, कि यह है क्या चीज क्यों ?"

"मैं क्या जानूं सरकार।" बोला महेश। अभिरामा ने कहा, "तुम जान सकते थे महेश, मगर तुम्हें मौका कहाँ दिया गया ?" तुम्हें तो सिखलाया गया कि अमीरों के जूठे बर्त्तन साफ करना ही तुम्हारा जन्मसिद्ध. अधिकार है, इसके आगे तुम कुछ कर ही नहीं सकते। सच बोलो—क्या तुम्हारा कभी मन नहीं करता कि तुम भी हमारी तरह सुख करो, आराम से टहलो ?" महेश युवक था, बीस-इक्कीस साल का। मगर स्वभाव से ऐसा कि संसार की अन्य वस्तु, अन्य सुखादि के लिये उसमें किसी प्रकार की स्पृहा ही नहीं है। सर पर नाममात्र के लिये बाल है। गंजी और हाफ पैण्ट पहनता है। टेण्ट छोड़ कर एक बार भी टहलने नहीं गया। यह भी क्या याद करेगा, शिमला गये थे। टेण्ट और मालिक के सामानों की रक्षा की, और कुछ देख न सका। अपना ऐसा नसीब कब होगा जो पास के पैसे खर्च कर शिमला आयेगा। यह भी क्या भाग्य है ! रात को आठ बजे महेश ने भोजन तैयार कर दिया। भोजन तैयार हो जाने के कुछ ही मिनट पहले अभिरामा वहाँ से उठ कर अपने बिछावन पर आ गई थी। महेश ने टेण्ट के द्वार पर से ही पूछा, "आपका खाना ले आऊँ ?"

"कौन है ?" अभिरामा ने ऐसे पूछा जैसे बाहर किसी अन्जान की बोली गूंज पड़ी हो।

"मैं हूँ, महेश !" बोला महेश। अभिरामा बोली, "क्या कहते हो, अन्दर आ जाओ न।"

"पूछ रहा हूँ, अन्दर खाना ले आऊँ।" महेश ने बाहर से ही कहा।

"पूछते रहो। जब तक अन्दर न आओगे, मैं जवाब न दूंगी।" बोली अभिरामा। विवश होकर महेश को अन्दर प्रवेश करना पड़ा। अभिरामा असावधान मुद्रा में पलंग पर लेटी थी। वस्त्र सभी अस्तब्यस्त थे। टेबुल पर तेज लैम्प जल रहा था। देख कर महेश लौटने लगा, अभिरामा ने

उसे रोक कर कहा, "ठहरो न, बैठ जाओ। तुम्हें तो दिन भर काम की भट्ठी में जलना पड़ता है। आराम करना तो तुम जानते ही नहीं। आओ, इधर बैठो।" महेश अभिरामा की बात टाल न सका और भूमि की ओर सर झुका कर नीचे बैठ गया। अभिरामा बोली, "इतने शरमाओ नहीं महेश, मुझसे घृणा नहीं करते तुम; मैं जानती हूँ।"

"आप हमारी मालकिन हैं, आपसे घृणा क्यों करूँगा!" सिर झुकाये हुए महेश ने कहा। इस पर अभिरामा ने एक क्षण उसे बड़े गौर से देखा और तब बोली, "आओ न, यहाँ हमारे पैताने बैठ जाओ। नीचे न बैठो।"

"आप के साथ कैसे बैठूंगा...?" महेश बोल रहा था कि बीच ही में अभिरामा ने कहा, "नही बैठोगे, तो अनिल जी से कह कर तुम्हें बर्खास्त करा दूगी।" महेश चुपचाप उठ कर अभिरामा के सिरहाने बैठ गया। अब अभिरामा कुछ अधिक सजग-सी हो गई। उसने महेश से पूछा, "महेश, सच-सच बतलाना। मुझे देख कर तुम अपने मन में कुछ नहीं सोचते?" महेश ने एक क्षण रुक कर कहा, "क्या सोचूंगा। कुछ नहीं।"

"नहीं ऐसी भी बात हो सकती है। सोचते होगे, कहते नहीं।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है।"

"महेश, तुम मुझसे डर रहे हो?"

"नहीं, मगर मालकिन से तो नौकर को डरना ही चाहिये।" महेश बोला। अभिरामा एकाएक उठ कर बैठ गई और विह्वल होकर बोली, "मुझसे डरने की बात नहीं महेश, मेरा हृदय भी तुमसे अधिक भावुक और मुलायम है। मगर एक बात है महेश, तुम बेवकूफ हो और बुद्धू भी हो। तुम यह नहीं जानते, अधिक चरित्रहीन पढ़े-लिखे और धनी लोग हुआ करते हैं। जानते हो कैसे, तुम्हारा मस्तक तो इस समय मेरे सामने उठता तक नहीं, यदि उनमें से कोई होता तो....। महेश तुम क्या सोच रहे हो, देखो तुम्हें मेरी सौगन्ध है उनके आने पर यह न कहना, मालकिन ने मुझे

पलंग पर अपने साथ बिठाया था। तुम्हारे लिये मेरे हृदय म जो स्थान है—वही स्थान सबके हृदय में नहीं हो सकता....तुम नहीं समझोगे महेश, गरीबी केवल ईमान को ही नहीं, बल्कि आत्मिक पतन से भी बचाती है। मेरे सामने तुममें अपने प्रति इतने छोटापन, इतनी नीचता का भाव सन्निहित है कि तुम्हारा पाप भी ऊपर नहीं उठ सकता, क्यों है न?" महेश चुपचाप सुन रहा था। अभिरामा ने कहा, "लाओ महेश, मैं तुम्हारा पैर दबा दूं.. और उसने अपना हाथ महेश के पैर पकड़ने के लिये बढ़ाया कि महेश ने अपने पैर समेटे और शीघ्र पलंग से उतर गया। इसी बीच बिल्कुल समीप से जूते का स्वर सुनाई पड़ा। अभिरामा ने घबड़ा कर कहा, "महेश, तुम बाहर चले जाओ। वे आ गये।" मगर महेश के बाहर निकलने के पूर्व ही अनिलदेव मीनाक्षी के साथ उसके सामने चले आये। दोनों काफी थके और परेशान दीखते थे। अभिरामा ने कहा, "आप लोग ऐसे क्यों दीखते हैं, इतने परेशान क्यों?"

अनिलदेव ने अभिरामा के प्रश्न का जो कुछ भी उत्तर दिया, उसका सारांश इस प्रकार था—लौटते समय वे कुत्ते को झरने में पानी पिला रहे थे, मीनाक्षी ऊपर खड़ी थी। इसी समय कोई नवजवान आया और उसने मीनाक्षी के गले में हाथ लगा दिया, वह चिल्ला पड़ी—अनिलदेव रिवाल्वर चलाना ही चाहते थे कि जवान ने मीनाक्षी के गले से दस हजार का हार निकाल लिया। कुत्ते को लेकर अनिलदेव ऊपर दौड़े आ रहे थे कि दूसरे जवान ने उन्हें पकड़ लिया और उनके हाथ से रोटी का डब्बा छीन कर बोला, "यह नहीं हो सकता। जानवर विदेशी बिस्कुट खाये और इन्सान को भूखों मरना पड़े। अगर बिस्कुट नहीं दोगे तो यहीं खत्म कर दूंगा।" और बिस्कुट लेकर अदृश्य हो गया।"

मीनाक्षी और अनिलदेव का बयान सुन कर अभिरामा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रही थी। उसने एक बार जोरों से कहा, "आप लोग झूठ बोलते हैं। मेरे साथ दिल्लगी न कीजिये., पाप लगेगा।"

"आपके साथ हम दिल्लगी नहीं करते। आपके सुहाग के लिये हम स्वयं चिन्तित हैं।" कहती हुई मीनाक्षी ने एक पोस्टर अभिरामा के हाथ में पकड़ा दिया, जिस पर यशोविजय की तस्वीर और हुलिया छपी थी। सरकार ने सूचना दी थी कि अभियुक्त इसी इलाके में आया है और उसे गोली मार देने वाले को पचीस हजार रुपये इनाम मिलेंगे।

(२८)

अपनी बहुमूल्य जिन्दगी हथेली पर लेकर यशोविजय जो कुछ भी धन संचय कर पाया था, उन्हें मार्ग के गरीब-भगवान के बीच बाँटता हुआ शिमला पहुँच गया। हरीश ने उसे छोड़ न दिया था। उसने क्रान्ति के संविधान का समुचित पालन किया। वह यशोविजय के एक शब्द पर निर्दोष से निर्दोष व्यक्ति की हत्या करने को तैयार था। उसके आये अभी कुछ ही दिन हुए थे कि शिमला में उसके पीछे-पीछे सरकार का खुफिया विभाग दीपमाला के साथ यहाँ आ पहुँचा। परन्तु दुर्भाग्य यह हुआ कि दो चार रोज के बाद ही यशोविजय को टायफायड हो आया। बुखार से उसका बदन तवे हुए लोहे की भाँति जल रहा था। दिन भर पहाड़ी पर दोनों रहते और रात को तलहटी में उतरते थे। पुलिस इस प्रकार सतर्क हो गई थी जैसे दिन में लालटेन लेकर खोज रही हो। स्वस्थ छै फीट का जवान यशोविजय दस कदम मुश्किल से चल पाता था। आज बारिश हो रही थी। पहाड़ी के कोने-कोने में सन्ध्या उतर आयी थी। मगर वहाँ दीप का नामोनिशान नहीं। वैसे पैसे वाले टॉर्च जला कर टहलते भी, मगर ठंढ इतनी पड़ रही थी कि इन सुकुमारों को टहलना असम्भव था। बुखार की गर्मी से यशोविजय का अंग-अंग काँप रहा था, होठ फरफरा रहे थे, वह अब बहुत धीमे-स्वर में बोल पाता था। उबड़-खाबड़ स्थान पर नीरव अन्धकार में जहाँ बर्फ-सी ठंढक थी, एक प्रकार से हिमपात ही हो रहा था, पहाड़ी के बीच नीचे मोटी दरी पर यशोविजय लेटा था। हरीश उसके सिरहाने बैठा था। वातावरण शांत था; किन्तु एकाएक एक ओर से झटाके का शब्द हुआ। चौंक कर हरीश ने रिवाल्वर उठा लिया।

"क्या है, हरीश ?" पूछा यशोविजय ने उसे चौंकते देख कर। हरीश ने कहा, "शायद पुलिस आ रही है भैया...बूट जूते का स्वर....।"

"पागल हो तुम....हमेशा पुलिस-पुलिस कहते रहते हो....रख दो पिस्तौल।" कम्पित स्वर में यशोविजय ने कहा, और एकाएक पास से प्रताड़ित होने वाला शब्द बन्द हो गया। यशोविजय ने आगे कहा, "सतर्क रहना जरूरी है, मगर यहाँ कौन आता है ? हमें अब सोचना यह है कि हमारी अन्तयेष्टि क्रिया के बाद हिंदुस्तान का कलाकार-संघ थक कर बैठ तो नहीं जायेगा, वे शांति के नाम पर अपनी कायरता का परिचय तो नहीं देंगे, देश का कलाकार अपने व्यक्तित्व, अपनी क्षमता और अपने अस्तिव को भूल तो नहीं जावेगा, वे पैसे वालों के बीच अपनी प्रतिष्ठा को नंगी कर नचायेंगे तो नहीं ? हरीश ?"

"कहो।" बोला हरीश। यशोविजय आवेश में आ रहा था। किसी दृढ़ संकल्प की भावना से उत्प्रेरित होकर उसके दाहिने हाथ की मुट्ठी बँध गई, उसने कहा, "मैं सोचता हूँ, हरीश ! मैं अब बचूगा नहीं। और मैंने सही अर्थ में मानवता के विरुद्ध कुछ नहीं, बल्कि मानवता के पक्ष में सब कुछ किया है। मुझे भय है, मौलिक सिद्धान्त की आज बात लेकर हमारे और साथी इसका कुछ गलत अर्थ न लगा लें। मैं समझता हूँ। प्रगतिशील कला का वह अर्थ है जिससे जीवन को बल मिले,व्यक्ति को एक नई दिशा मिले; प्रगतिशील कलाकार वह है जो युग के साथ कदम मिला कर चल सके; प्रगति वह है जो धारा का मार्ग प्रशस्त करे, समुद्र के गर्भ में छिपे शव को ऊपर न दहलावे....हरीश....?"

. . .

हरीश ने सतर्क होकर पूछा, "क्या है ?" उसने अपना रिवाल्वर सम्हाल लिया। यशोविजय ने ऊँगली से संकेत कर कहा, "वह देखो, वह छवि, दूर जाती हुई....।" हरीश ने उधर देखा और पहचान गया। जाने वाले कौन थे। उसने कहा, "वह तो वही व्यक्ति है जिसके हाथ से मैंने पावरोटी का डब्बा छीन लिया था। मैं उसे पहचान रहा हूँ।" इस

पर टौर्च फिर जला तो यशोविजय ने कहा, "मैंने भी उस लड़की को पहचान लिया जिसके गले से मैंने हार उतार लिया था। मगर....?"

"मगर क्या ?" हरीश ने पूछा। यशोविजय ने कहा, "मगर एक औरत साथ में और है हरीश....।" दूर से आती हुई तीनों मूर्त्तियाँ इधर ही चली आ रही थीं। यशोविजय उनकी ओर ध्यानपूर्वक देख रहा था। उसने कहा, "कुत्ते को पैसे वाले बिस्कुट,और गरीब इन्सान को जूते खिलाते हैं....यह मेरी महान परीक्षा आ गई हरीश....यह हमारी क्रान्ति का महापर्व समझो, दो रिवाल्वर, जल्द दो....।" यशोविजय की आज्ञा हरीश टाल नहीं सकता था। उसने रिवाल्वर यशोविजय के हाथ में पकड़ा दिया और स्वयं भविष्य में आने वाली विपत्ति से मुकाबला करने के लिये तन कर खड़ा हो रहा। एक पुरुष दो नारी के साथ इधर ही आ रहा था। यशोविजय के दिमाग में अनिलदेव घूमने लगा—शान्ति-निकेतन के वे सुनहले दिन। चित्रकला भवन। होस्टल से एक साथ पढ़ने जाना, पढ़ने आना। एक बार चित्रकला की आलोचना करते-करते क्रोधित होकर अनिलदेव के गाल पर झटपट तमाचा जड़ देना, तुम आर्ट नहीं जानते तो क्यों टाँग अड़ाते हो ?"

"खबरदार यशो, अब मुझ से मत बोलना।" अनिल ने कहा।

"ठीक है, न यहाँ बोलेंगे, न मेस में।" यशोविजय ने कहा।"

दूसरे दिन से बातचीत बन्द हो गई। बहुत दिन तक दोनों एक दूसरे से बोलते नहीं थे। यशोविजय यह सोच रहा था, और वह पुरुष ज्यों-ज्यों समीप आता त्यों-त्यों रिवाल्वर सम्हालता और फिर उसे ढीला करने लगता। उसे आगे भी बातें याद आयीं। यशोविजय ने अपनी प्रतिभा से शरत् बाबू के उपन्यास "काशीनाथ" का स्टेज रूपान्तर किया और दीपावली के अवसर पर उसे शांति-निकेतन में ही खेलने का निश्चय किया गया। दीपावली आयी। कोने-कोने में दीपमालिका दिखलाई पड़ी। शान्ति-निकेतन में स्वर्ग की लक्ष्मी उतर आई। ड्रामा की बेजोड़ तैयारी

हुई थी। खेल का परदा उठने के पहले ही विंग में एकाएक अनिलदेव हाथ में बहुत सी मिठाइयाँ लिये आया और यशोविजय को देकर बोला, "लो भाई, मिठाई खा लो। और आज लक्ष्मीपूजा है। मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ। आज मैं तुमसे बोलूंगा, और तुम भी बोलो। मुझसे अधिक दिन नही रहा जा सका है।" और तब स्नेहासिक्त यशोविजय की आँखों में जल भर आया था।

हाँ, तो मुझे यह कहना है कि सामने अनिलदेव की ही जीवित मूर्त्ति है जिस पर यशोविजय रिवाल्वर चलाना चाहता है, संकोच और पश्चात्ताप से उसका हाथ काँप रहा था। धीरे-धीरे अनिलदेव इधर ही चले आ रहे थे। एक मिनट एक घंटा हो रहा था। अनिलदेव जब काफी समीप आ गये तो यशोविजय ने चीख कर कहा, "हरीश....।" और न जानें किस प्रकार उसके हाथ से रिवाल्वर का घोड़ा दब गया। अनिलदेव दस कदम की दूरी पर विक्षिप्त होकर गिर पड़े। बुखार से काँपता हुआ यशोविजय अनिलदेव के पास आ गया। हरीश ने अपना टॉर्च जलाया। अनिलदेव की छाती में रिवाल्वर का निशान लगा था। वे मूर्छित हो रहे थे यशोविजय को देख कर अभिरामा चीख पड़ी ; "ओह, तुम यहाँ ?"

"हाँ, मैं ही हूँ लिटिल ! यशोविजय, पहचान रही हो न ?" बोला यशोविजय और उसने अनिलदेव को पुचकार कर कहा, "भाई अनिल, तुम्हारे लिये मेरे दिल में आज कम स्नेह है..ऐसी बात न समझ लेना... मुझे अपनी जिन्दगी से बहुत प्रेम है, मगर कभी घृणा इसीलिये होने लगती है कि लोग मेरा अर्थ गलत न समझ लें।"

"ठीक है, यशो ! मगर मैंने तुम्हारा क्या नुकसान किया था, तुम अपनी पत्नी से पूछ लो....।" बेहोश होते हुए अनिलदेव बोल रहे थे। बीच में ही में यशोविजय ने कहा, "मित्र के नाते तुम मेरे प्राण थे अनिल, किन्तु हमारे सिद्धान्त के लिये तुम मेरे शत्रु...तुम, तुम कुत्ते को रोटी खिलाते हो....। मैं तुम्हारी हत्या कर सकता था, परन्तु अपने अनुशासन

की नहीं, अपनी क्रान्ति के विधान की नहीं। और तुम्हें एक बात का दुःख और होगा कि मैं इसके लिये मित्रता के नाते तुमसे क्षमा माँग रहा हूँ और अपने सिद्धान्त की पूर्त्ति के लिहाज से खुश हो रहा हूँ....।"

"मित्र मुझे तनिक भी...दुःख नहीं....भाई, य...शो...वि ...ज...य...तुम ही मुझे...क्षमा करना...तुम्हारा नाटक... काशीनाथ कितना अच्छा...काशीनाथ दर्शन-शास्त्र का विद्वान था... परन्तु गरीब रहने के कारण ही...उसकी पत्नी ने...। पैसे को ही लोग सब कुछ समझने लगे...हैं...तुम...मुझे...क्षमा करोगे...।"

"मेरे मित्र....।" यशोविजय ने कहा, किन्तु अनिलदेव...। अभिरामा मूर्त्ति बन गई थी। मीनाक्षी को बेहोशी आ गई। इसी समय उस स्थल के दो ओर से बूट जूते का स्वर हुआ और दूसरे ही क्षण सैकड़ों संगीनधारी सिपाहियों ने इन लोगों को घेर लिया। यशोविजय की छाती पर इन्सपेक्टर ने रिबाल्वर रख कर कहा, "हाथ ऊपर करो।" यशोविजय चौंक गया। उसने हाथ उठा कर पूछा, "क्रान्तिकारी जान हार सकता है, जबान नहीं। मैं आपको कुछ नहीं करूँगा, मगर इन्सपेक्टर तुम्हारी आवाज जनानी क्यों?" उसके प्रश्न के साथ ही इन्सपेक्टर ने अपना हैट उतारा, इन्सपेक्टर वेश में दीपमाला थी। पुलिस की बत्ती चारों ओर से जलने लगी थी। धीरे-धीरे शोर मच गया। और भी वहाँ पुलिस-अफसर और वहाँ के आदिवासी आ गये। यशोविजय तनिक भी घबड़ाया नहीं था। उसने सार्जेन्ट से कहा, "आप आज मुझे गिरफ्तार कर रहे हैं, कीजिये। मगर यह क्रान्ति यहीं समाप्त हो गई, सरकार यह न सोच ले। मेरा संदेश चारों ओर फैलेगा और देश के कलाकार अब यह समझेंगे कि वे अपने को जितना भी सीधा बना कर रहने की चेष्टा करेंगे, साम्राज्यवाद और पूंजीवाद उनके रक्त को उतना ही चूसने का प्रयास करेगा। मुझे अपने और प्रिय मित्र हरीश के गिरफ्तार होने की चिन्ता नहीं। दीपमाला, याद रखो। तुमसे भी कहे जाता हूँ। मैंने सरकार की दृष्टि में वह जुर्म किया है कि मुझे

वह भी सजा दी जा सकती है जो मृत्यु-दंड से अधिक कष्टकर हो, मैक्सिम गोर्की ने कहा था, 'संसार में जब तक धनी लोग हैं, तब तक न सुख दीखेगा, न शान्ति रहेगी,—और न न्याय ही होगा।' मगर मेरे बाद भी आगे का हिन्दुस्तान और उसकी सच्ची स्थिति अपने यहाँ मुझ जैसे एक यशोविजय नहीं, सैकड़ों नहीं, हजारों नहीं, लाखों यशोविजय को पैदा करेगी और हमारी क्रान्ति अपराजय की ओर बढ़ती दीखेगी. . . . सार्जेन्ट, तुम सरकार के नौकर हो, अपना कर्त्तव्य देखो। हमें हथकड़ी पहनाओ।"

इसके दो क्षण बाद ही सार्जेन्ट ने यशोविजय और हरीश को गिरफ्तार किया और कहा, "मेरी यह मजबूरी है।" इसी समय दीपमाला पत्थर पर गिर पड़ी। उसके मुख से निकला, अरे. . .रात. . .पागल . . . . हो गई. . . ।"

समाप्त